नोट—जिस पृष्ठ ६९ पर 'जैनियों को असम्मत नहीं है' ऐसा छपा है, उसको ९७ समझना और उसीसे ६४ तक अनुक्रम जानना ॥
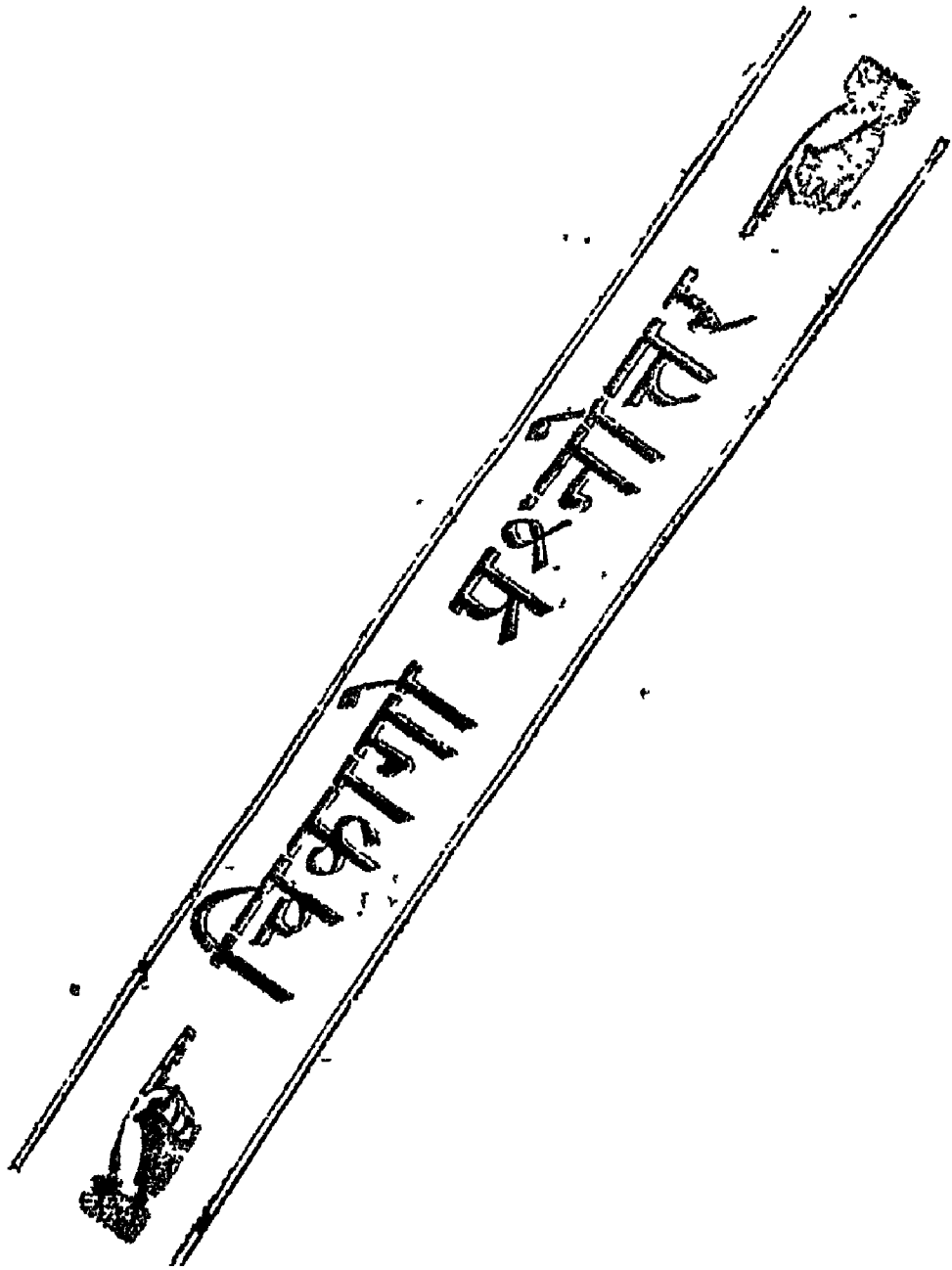
कर्त्ता-

महामुनिराज श्रीआत्मारामजी.

श्रीमद्बुद्धिविजय गणि शिष्य

जैनश्वेतांबर—तपगच्छाचार्य

न्यायांभोनिधि

श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराज

जन्म-सं. १८९३ स्वर्गवास-सं. १९५३

उपोद्घात्

नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः।

विदितहो कि ईस्वी सन् १८९२ नवम्बर तारीख १६ का लिखा हुआ एकपत्र देश अमेरिका शहर 'चिकागोसे मुंबई की "दी जैन एसोसीएशन आफ इंडिया"की मारफत श्रीश्री १००८श्रीतपगच्छाचार्य न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरि प्रसिद्धनाम **श्रीआत्मारामजी** महाराजको मिलाजिसकी नकल सबलोकोंको मालूम होनेकेवास्ते नीचे लिखता हूं ॥

WORLDS CONGRESS AUXILIARY.

COMMITTEE ON RELIGIOUS CONGRESSES.

REV. JOHN HENRY BARROWS, D. D.,
Chairman.

CHICAGO U. S. A. Nov. 16. 1892.
2330 MICHIGAN AVE.

MR. ATMARAMJI,
Bombay,
India.

Please address me—
WILLIAM PIPE,
2330 Machigan Ave,
Chicago,
United States of America.

DEAR SIR,

There will be mailed to you in the course of a week an appointment as a member of the Advisory Council of the Parliament of the Religions to be held in Chicago in 1893. In the meantime the Chairman instructs me to ask you if you will kindly forward to *me* at your earliest convenience *two* photographs of yourself and a short sketch of your life. These are to be used in

preparing the illustrated account of representatives of the great faiths of the world. Will you therefore give this matter your earnest consideration and forward to me as soon as possible what is requested. Some other pictures and explanatory literature that would illustrate any feature of Hinduism would be much appreciated. With fraternal greetings.

I am,

Faithfully and sincerely yours,

WILLIAM PIPE.

इस अंग्रेजीपत्रका भावार्थ —ईस्वी सन् १८९३को चिकागोमें सर्व धर्मोंकी जो धर्मपार्लीमिंट होगी; आपको उसका मेंबर (सभ्य) होनेके लिये एक सप्ताहके भीतर लिखा जावेगा, परं अधुना सभापतिकी आज्ञासे लिखा जाता है कि आप अपनी दो फोटो और अपना संक्षिप्त जीवनचरित्र शीघ्र कृपा करें इनसे दुनयाके प्रसिद्धमतोंके प्रतिनिधियोंके चरित्र त्यार किये जाने हैं, इसवास्ते आप अपनी तस्वीरें और जीवन चरित्र जितनी शीघ्र होसके उतनी शीघ्र प्रस्थित करदें, अन्य कोई छवीयें और हिंदुओंके हालात संबंधी सविस्तर निबंध त्यारकर प्रेषित करोगे,तो स्वीकार किया जावेगा

इस पत्रका उत्तर महाराजजी साहिबकी सम्मतिसे मुंबईके श्रावकोंने मिस्टर वीरचंदराघवजी गांधी बी० ए० एम० आर० ए० एस०से लिखाया, जिसका सार यह कि आपका पत्र मुनिमहाराजको पहुंचा, आपने जो कार्य प्रारंभ किया है, उसमें मुनिमहाराज अतीव आनंद प्रदर्शित करते हैं, परंतु साथमें इतना खेदभी प्रकट करते हैं कि वृद्धावस्थाके कारण, शास्त्रीय कारण और कितनेक लौकिक कारणोंसे वहां पर आने संबंधि आपके आमंत्रणको सर्वथा स्वीकार करके सार्थक नहीं कर सक्ते हैं तथापि आपके लिखे मूजिब मुनिमहाराजके दो फोटो, मुनिमहाराजका संक्षिप्त जीवनचरित्र, और अन्य कितनीक उपयोगी फोटो वगैरह आपको भेजी जाती हैं जिनकी पहुंच कृपा करनी ॥

इसके प्रत्युत्तरमें चिकागोसे ईस्वी सन् १८९३ अप्रैल तारीख ३ का लिखा पत्र आया जिसकी नकल नीचे मूजब है ॥

Chicago, U. S. A., April 3rd 1893.

MUNI ATMARAMJEE,
9, Bank Street Fort,
Presidency Mills Co. Ld.

REVEREND SIR,

I am very much delighted to receive your acceptance of your appoint-

ment together with the photographs and the biography of your remarkable life. Is it not possible for you to attend the Parliament in person? It would give us great pleasure to meet you. At any rate, will you not be able to prepare a paper which will convey to the accidental mind, a clear account of the Jain Faith, which you so honorably represent? It will give us great pleasure and promote the ends of the Parliament if you are able to render this service.

I send you several copies of my second report.

Hoping to hear from you soon and favorably, I remain, with fraternal regards:—

Yours cordially,

JOHN HENRY BORROWS,

Chairman,

Committee on Religious Congress.

इस अंग्रेजी पत्रका भावार्थ यह कि :—

अतीव हर्षका समय है,कि आपने सभ्यपदको स्वीकार किया है, आपकी फोटो और आपका अपूर्व अलौकिक जीवनचरित्र पहुंचा है। क्या आपका यहां आकर सभा को शोभा देना संभव होसकता है ? आपके दर्शनसे हमको अतीव आनंद प्राप्त होगा, जिस जैनमतका आप इतना महत्व प्रकाश रहे हैं, क्या आप किसी प्रकारसे एक ऐसा लेख त्यार कर सकेंगे, कि जिसमें उस जैनमतका इतिहास और उपदेश समावेश हो? आप का ऐसा निबंध आनेसे हमको बड़ीभारी खुशी होगी, और हमारी समाजकी उन्नति का कारण होगा, हम अपनी दूसरी रिपोर्टकी कितनीक नकलें आपकी सेवामें भेजते हैं ॥

इस पत्रका उत्तर शाह मगनलाल दलपतरामकी मार्फत लिखा गया कि मुनि महाराजको आपका पत्र पहुंचा,आपकी इच्छानुसार मुनिमहाराजने एक निबंध लिखना प्रारंभ किया है। इत्यादि ॥

इसके उत्तरमें जून तारीख १२ ईस्वी सन् १८९३का लिखा हुआ पत्र शाह मगन लाल दलपतरामके द्वारा आया जिसकी नकल भी नीचे लिखता हूं ॥

Chicago, U. S. A., June 12th, 1893.

MY DEAR SIR,

I am desired by the Rev. Dr. Barrows to make an immediate acknowledgment of your favour of May 13. It is eminently to be desired that there

should be present at the Parliament of Religions a learned representative of the Jain community.

We indeed sorry that there is no prospect of having the Muni Atmaramji with us and trust the community over which he presides will depute some one to represent. It is, I trust, needless for me to say that your delegate will be received by us in Chicago with every distinction and during his stay here will receive of our hospitality in as great a measure as we are able to record it. If you therefore decide to send a representative, will you kindly cable the fact to me ? The paper which learned Muni is preparing will indeed be very welcome and will be given a place in the programme in keeping with the high rank of its author. Although we here in Chicago are a long distance from you, the name of Muni Atmaramjee is frequently alluded to in religious discussions. For the purpose of illustrating the volumes Which are to record the proceedings of the Parliament of Religions I am in want of a few pictures to illustrate the rites and ceremonies of the Jain faith. May I ask you to procure these for me (at any expense) and send at your earliest convenience.

I am,

Very truly yours,

WILLIAM PIPE,

Private Secretary.

इस अंग्रेजी पत्रका भावार्थ—रैंवेरेंड डाक्टर वैरोज साहिब बहादुरकी आज्ञानुसार मैं आपके १३ तारीख मईके पत्रकी पहुंच निवेदन करता हूं, इस धर्मसमाजमें जैनियोंकी तर्फसे एक विद्वान् प्रतिनिधिका होना बहुतजरूरी है,खेद है कि इस समाज में मुनिआत्मारामजीके पधारनेका कोई अनुमान नहीं है, हम आशा करते हैं कि जिस संघके आप मुखी हैं, वह किसी न किसी विद्वान् पुरुषको जरूर भेजेगा, यह कहना अनवसरीय है कि यहां चिकागोमें आपके प्रतिनिधि का सर्वथा स्वागत और अतिथिपणा होगा, जब आप किसीको प्रतिनिधि करके भेजनेका निश्चय करलेवें तो आप हमको तार द्वारा खबर देवें, जो निबंध विद्वान् मुनिजी त्यारकर रहे हैं, हमारे लिये बहुमनरंजक होगा, और विज्ञापनपत्रमें योग्यस्थान दिया जावेगा यद्यपि हम यहां चिकोगोमें बड़े दूर देशांतरोंमें हैं, तथापि मुनि आत्मारामजीका नाम मत मतांतरीय चर्चोंमें प्रायः कथन किया जाता है, इस धर्मसमाजकी कार्रवाईकी जो किताबें त्यार होनी हैं उसके लिये कितनीक मूर्तियोंकी जरूरत है जिनसे जैनमतकी रीतियें प्रकाशित हों इसलिये निवेदन है, कि आप इनको यत्नसे शीघ्र भेज दें ।

पूर्वोक्त पत्र श्रीमहाराजजी साहिबने मुम्बईकी "दी जैन एसोसीएशन आफ इंडिया" को पहुंचा दिया और साथमें अपनी सम्मति भी लिख दी, कि यदि मुम्बई वगैरहके जैनियोंकी सलाह होजावे और वीरचंद राघवजी गांधीको जैनधर्मका प्रतिनिधि करके भेजा जावे तो अच्छा है, वहां इनके जानेसे एक तो सर्वदेशीय धर्मपार्लिमेंटमें जैनधर्मका नाम सदाके वास्ते प्रसिद्ध हो जावेगा और जिनको जैनधर्म्म क्या है, जैनधर्म वालोंका क्या मंतव्यामंतव्य है, वगैरह बातोंका ज्ञान नहीं है उनको भी पूर्वोक्त बातोंका ज्ञान हो जावेगा, जिससे एक दिन जैनधर्मकी उन्नतिका झंडा फरकने लग जावेगा आगे जैसी आप श्रीसंघकी मरजी ॥

श्रीमहाराजजी साहिबके इस विचारको मुंबईके भाविक धर्मात्माओंने मंजूर कर लिया, क्योंकि उनको श्रीमहाराजजीसाहिबके कथनोपरि पूर्ण दृढ विश्वास था, कि श्रीमहाराजसाहिबने जो विचार दरसाया है, सो शास्त्रविरुद्ध या हानिकारक कदापि न होगा, क्योंकि इस समय इनके सदृश जैनधर्ममें अन्य कोई गीतार्थ नहीं है। ऐसा विचार कर जैनियोंकी बडी कमेटीने मुम्बईमें एकत्र होकर मि० वीरचंदगांधीको चिकागो भेजनेको त्यार किया, उस समय वीरचंदगांधी और चिकागोवालोंकी प्रार्थना से प्रश्नोत्तर रूप यहग्रंथ श्रीमहाराजजी साहिबने त्यार किया जो मैं अधुना अपने प्रेमी भाइयोंके लाभार्थ प्रगट करता हूं ॥

चिकागोके निमित्त और चिकागोके प्रश्नोंकेही उत्तर इस ग्रंथमें होनेसे ग्रंथ कर्त्ताने इस ग्रंथका नाम **"चिकागो प्रश्नोत्तर"** रक्खा है ॥

इस ग्रंथकर्त्ताका नाम प्रायः आबाल गोपाल पर्यंत प्रसिद्ध होनेसे और उनका ज्ञान प्रायः सज्जन पुरुषोंको सर्वत्र विदित होनेसे इस ग्रंथकी अधिक उपमा लिखनी उचित नहीं और न मैं लिख भी सकता हूं, क्योंकि विदेशीय पाश्चात्य पंडितोंने जिस महात्माके विषय अपना अतीव उच्च अभिप्राय प्रदर्शित किया है तो उस महात्माके विषय या उनके रचे ग्रंथों विषय मैं क्या शोभा लिख सका हूं? कदापि नहीं, बंगाले की एशियाटिक सोसायटीके सेक्रेटरी डाक्टर ए०अैफ०रुडालफहार्नल साहिबने उपासकदशांग सूत्रकी अंग्रेजी उपोद्घातमें ऐसे लिखा है ॥

In a third Appendix (No. III) I have put together some additional information, that I have been able to gather since publishing the several fasciculi. For some of this information, I am indebted to Muni Mahárâj Atmá Ramjee, Anand Vijayji, the well-known and highly respected Sadhu of the Jain community throughout India, and author of (among others) two very useful works in Hindi, the *Jaina Tattvadarsha* mentioned in note 276 and the *Ajnana Timira Bhāskara.* I was placed in communication with him

through the kindness of Mr. Maggan Lal Dalpatram. My only regret is that I had not the advantage of his invaluable assistance from the very beginning of my work. For some useful suggestions and corrections I am also indebted to Mr. Virchand R. Gandhi, the Honorary Secretary to the Jain Association of India.

The World's Parliament of Religions.

(दी वर्ल्डस पार्लिमेंट आफ रिलिजन्स) इस नामकी शहर लंडनकी छपी पुस्तक के २१में पृष्ठ ऊपर श्रीमहाराजजी साहिवकी मूर्त्ति दी है और उसके नीचे ऐसे लिखा है

"No man has so peculiarly indentified himself with the interests of the Jain Community as Muni Atmaramji. He is one of the noble band sworn from the day of initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the High priest of the Jain Community and is recognized as the highest living authority on Jain Religion and literature by Oriental Scholars."

इसका भावार्थ पंजावदेश तीर्थ स्तवनावलि की उपोद्घात पृष्ठ ३ में छपा है और हार्न्ल साहिवने शास्त्रीमें सटीक उपासकदशांग सूत्र छपवाया है जिसकी आदिमें ऐसे लिखा है

दुराग्रहध्वान्तविभेदभानो, हितोपदेशामृतसिंधुचित्त ।
सन्देहसन्दोह, निरासकारिन्, जिनोक्तधर्मस्य धुरंधरोऽसि १।
अज्ञानतिमिरभास्करमज्ञान, निवृत्तये सहृदयानाम् ।
आर्हततत्वादर्श ग्रंथमपरमपि भवानकृत । २ ॥
आनंदविजय श्रीमन्नात्माराम महामुने ।
मदीयनिखिल प्रश्न व्याख्यातः शास्त्रपारग ॥ ३ ॥
कृतज्ञता चिन्हमिदं ग्रंथ संस्करणं कृतिन् ।
यत्नसम्पादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ॥ ४ ॥

कलिकातायाम् २२ अप्रिल् ॥ सन् १८९० ।

भावार्थ—हे दुराग्रह (कदाग्रह) रूप अंधेरेको दूरकरनेमें सूर्यसमान ! हे हितोपदेश रूप अमृतके समुद्रमें चित्त स्थापन करनेवाले ! हे संदेहके समूहोंको दूरकरनेवाले आप जिनोक्त अष्टादश दूषण रहित सर्वज्ञ प्रणीत धर्मके धुरन्धर हैं । १ ।

आपने सज्जन पुरुषोंके अज्ञानकी निवृत्ति निमित्त अज्ञानतिमिरभास्कर और आर्हततत्वादर्श (जैनतत्वादर्श) ग्रंथ वनाये हैं ॥ २

हे आनंदविजय ! हे श्रीमन् ! हे आत्माराम ! हे महामुने ! हे मेरे संपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर देनेवाले ! हे शास्त्रोंके पारगामिन् ! हे पुण्यात्मन् ! आपने मेरे ऊपर जो उपकार

किया है उसके बदलेमें कृतज्ञताके चिन्हरूप यत्नसे प्राप्त किये इस पुस्तकको श्रद्धा पूर्वक मैं आपको अर्पण करता हूं ॥ ३ ॥ ४ ॥

इस ग्रंथके वांचनेसे वाचकवर्गको यह ज्ञात होवेगा कि ईश्वर क्या वस्तु है, ईश्वर कैसा मानना चाहिये, जैनी कैसा ईश्वर मानते हैं और अन्यान्य मतावलंबी कैसा मानते हैं, ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध होसक्ता है वा नहीं, कर्म क्या वस्तु है, कर्मके मूल भेद कितने हैं, और उत्तर भेद कितने हैं, कौन २ कार्य वशसे कौन कौन कर्मका बन्ध होता है और क्या २ तिनका फल होता है, एक गतिसे गत्यंतर में कौन लेजाता है, जीव और कर्मका क्या संबंध है,कर्मका कर्त्ता जीव आपही है वा अन्य कोई इससे करवाता है, अपने किये कर्मका फल निमित्त द्वारा जीव भोक्ता है वा कोई भुक्तानेवाला है, सर्वमतोंकी किस किस विषयमें परस्पर ऐक्यता है; आत्मा में ईश्वर होनेकी शक्ति है वा नहीं, मोक्षपदसे संसारमें जीव पुनः नहीं आता है, प्रति समय जीव मोक्षको प्राप्त होवें, तोभी संसार जीवोंसे रहित नहीं होवेगा, पुनर्जन्मकी सिद्धि, आत्माकी सिद्धि, ईश्वरकी भक्ति करनेसे क्या फायदा होसक्ता है, और किस रीतिसे भक्ति करनी चाहिये, मूर्त्ति कैसी और क्यों माननी चाहिये, मनुष्यका और ईश्वरका क्या संबंध मतोंवाले मानते हैं, साधुका क्या धर्म है, और गृहस्थीका क्या धर्म है, धार्मिक और सांसारिक जिंदगीके नीतिपूर्वक लक्षण,नानाप्रकारके धर्मशास्त्रों के देखनेकी आवश्यकता और उससे होते फायदे, धर्मशास्त्रावलोकनके नियम, ईश्वर अवतार धारण करता है वा नहीं, अवतार धारण करनेसे मुक्तात्मा ईश्वरमें कलंक प्राप्ति, ईश्वर दूषण सहित है वा दूषण रहित है उसकी पिछान,धर्मसे भ्रष्ट हुएकी पुनः शुद्धि, जिंदगीके भय निवारणके कायदे, धर्मके अंग और लक्षण इत्यादि अनेक तत्वकी बातोंका ही इस ग्रंथमें ग्रंथकर्त्ताने समावेश किया है, इसवास्ते यदि इस ग्रंथ का नाम तत्वपुंज रखा जावे तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है ॥

यह ग्रंथ श्रीमहाराजजी साहिबने बनाकर मि०वीरचंदगांधीको दिया, इसकी सहायतासे मि० वीरचंदने चिकागो प्रमुख शहरोंमे लोकोंके मनको तत्वज्ञानके प्रति ऐसा उत्साहित किया कि पुनरपि तत्वाकांक्षी होके उन लोकोंने मि०वीरचंदको अपने देशमें आगमन निमित्त आमंत्रण भेजा, जिसको स्वीकार करके मि० वीरचंद सकुटुंब जानेको उद्यत हुए उस समय मुंबईके प्रेमी धर्मोन्नतिकारक भाइयोंने मि० वीरचंदको मान पत्र दिये ॥

ग्रंथ गौरवताके भयसे केवल एक मानपत्रका भावार्थ नीचे लिखता हूं ॥

प्रियबंधु मि० वीरचंदराघवजी गांधी बी० ए० !

हम श्रीहेमचंद्राचार्य अभ्यासवर्गके मेंबर हर्ष और शोक प्रकटकरनेको एकत्र

हुए हैं, खुशी इसलिये कि आपजैनधर्मकी उन्नति और जैनधर्मके उपदेशार्थ ऐसे दूर देशको चले हैं और शोक इसलिये कि आप जैसे सहायक की सहायतासे वंचितरहेंगे

भाई साहिब, जब हमारे सधर्मी भाइयोंको इंगलेंडी भाषाका न्यूनाभ्यास था आपने अपने स्कूलकी बड़ी २ परीक्षाएँ पास करके धार्मिक और सांसारिक कार्योंमें ऐसी पटुता प्रकट की, कि वर्णन करना असंभव है, आपने जो २ परिश्रम श्रीशत्रुंजय और सम्मेदशिखर आदि तीर्थस्थानोंके लिये किये हैं अतीव स्तुतिपात्र और स्वतः प्रसिद्ध होनेसे वर्णन करना व्यर्थ है ॥

सन् १८९३में आप अमेरिकाकी धर्मसमाजमें हमारे महामुनिराज श्रीआत्माराम जीके प्रतिनिधिहोकर गये, वह मुनि कौन थे ? जैनसमुदायके फायदोंमें तत्पर और संयम ग्रहण करनेके दिनसे जीवनपर्यंत जिन प्रशस्त महाशयोंने स्वीकृत श्रेष्ठधर्ममें अहोरात्र सहोद्योग रहनेका नियम किया है उनमें से थे, जिनको जैनधर्मका परमाचार्य और जैनशास्त्रोंका प्रमाणिक वक्ता प्राच्य विद्वानोंने माना है ॥

जिनकी अकाल मृत्युपर सकलश्रीसंघ रुदन करताहै। जिनके सदृश विद्वान् शास्त्रज्ञाता उनकी गद्दीकेवास्ते मिलना कठिन है और जिनके पवित्र धर्मकार्य वर्त्तमान और अनागत सन्तानोंके दिलोंमें सदा हरे भरे झलकते रहेंगे। आपने जैनधर्म और इसकी फिलासफी पर अमेरिकामें जो २ भाषण दिये, उनसे हमको और हमारे अमेरिकन भाइयोंको अथाह लाभ हुआ है। यह एकबड़ी खुशीकी बात है कि अधुना दूसरी वार आप अमेरिकन भाइयोंके आमंत्रणसे जाते हुए अपनी धर्मपत्नीको भी संग लेजाते हैं, हम यह कहनेसे रुक नहीं सकते कि उसका ऐसे करना "सहचारिणी" शब्दको सार्थक कर रहा है ॥

समाप्तिमें, भाईसाहिब ! हम यह प्रार्थना करते हैं कि आप और आपका कुटुंब प्रवासमें सुख आनंदमें प्रवर्त्तो, आपने जिस महान् कार्यको स्वीकृत किया है आपको साफल्य हो, धन्यवाद वृष्टि आप पर हो और युगप्रधान पदवीके धारक हो।

मुंबई तारीख १२ अगस्त सन् १८९९। **अमरचंद पी० परमार,**

ओनरेरीमंत्री हेमचंद्राचार्य अभ्यासपद।

हे सज्जन पुरुषो ! मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूं कि यदि मेरी अल्प बुद्धिके प्रभावसे वा प्रमादके वशसे वा दृष्टिदोषसे वा छापेकी गलतीसे कोई अशुद्धता रह जावे तो आप उसको शुद्ध करलेवें और कृपाकरके मुझे खबर करदेवें जिस से पुनरावृत्तिमें शुद्धिकी जावे ॥ इति शुभम् ! शुभम् !! शुभम् !!!

आप श्रीसंघका दास।

जसवंतराय जैनी, लाहौर।

॥ ॐ नमः श्रीपरमात्मने ।

चीकागो प्रश्नोत्तर

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यंते ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ १ ॥
यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोष कलुषः स चेद्भवान्नेक एव भगवन्नमोस्तु ते ॥ २ ॥
यं शैवा स्समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशास्त्रनिरताः कर्मेति मीमांसकाः ।
सोयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्य चूडामणिः ॥ ३ ॥

प्रश्न–ईश्वरकी आदि है या नहीं ?

उत्तर–ईश्वर पदकी आदि नहीं है क्योंकि जिस वस्तुकी आदि होती है उसके दो कारण अवश्यमेव होते हैं, एक उपादान कारण और दूसरा निमित्तकारण। ईश्वरपद कार्यानुकूल यह दोनों कारण किसी प्रमाणसे भी सिद्ध नहीं होते हैं,इस हेतुसे ईश्वर पद अनादि है। अनादि कालसे जो आत्मा जीवनमोक्ष और विदेहमोक्ष अवस्थाको प्राप्त हुए हैं और आगेको होवेंगे तिस मोक्षपद प्राप्तिका नाम ही ईश्वर है मोक्षपद कहो वा ईश्वर कहो यह दोनों एकही हैं॥

प्र०–मनुष्योंको किस तरह निश्चय हुआ कि ईश्वर है ?

उ०–इस जगत्‌में जितने ईश्वरके माननेवाले मनुष्य हैं प्रायः उन सर्वको इस जगत्‌की विचित्र रचनाके देखनेसे ऐसा निश्चय

होता है,कि ऐसा विचित्र रचनाका रचनेवाला कोई अनंतशक्तिमान् होना चाहिये, जो ऐसा सृष्टिका कर्त्ता है सोई ईश्वर है । इस अनुमानसे मनुष्योंको निश्चय हुआ है कि ईश्वर है,परंतु यह अनुमान ठीक नहीं है क्योंकि चैतन्य और जड़ इन दोनों पदार्थोंमें अनंत शक्तियां हैं,वे शक्तियां परस्पर काल स्वभाव कर्म नियति और प्रेरक स्वभावको प्राप्त होनेसे यह संसार अनादिकालसे प्रवाह रूप विचित्र प्रकारका उत्पन्न होता है और नाशभी होता है। और चैतन्य जड़रूप द्रव्योंसे प्रवाहरूप करके यह संसार अनादि है इसवास्ते पूर्वोक्त अनुमानसे जो मनुष्योंने ईश्वर निश्चितकरा है सो ठीकनहीं है।

प्र०—प्राचीन शास्त्रोंमें ईश्वरके माननेमें क्या कथन है ?

उ०—जैनमतके शास्त्रोंमें तो जो जीवनमोक्ष अष्टादश दोष रहित अरिहंत तीर्थंकर और जब देह रहित होकर सिद्धपद अर्थात् मोक्षपदको प्राप्त होते हैं तिस जीवनमोक्ष और विदेहमोक्षपदकोही ईश्वर मानना कहा है। प्राचीन सांख्यशास्त्रमें ईश्वर मानाही नहीं है। नूतन सेश्वरवादि सांख्यमतमें महादेवको ईश्वर मानना कहा है। जैमनीय मतमें भी ईश्वर नहीं माना है, उत्तरमीमांसावादि वेदांतमतमें जो कुछ जगत्में है सो सर्व ईश्वरही है ऐसा माना है नैयायिक वैशेषिकमतमें सर्व व्यापक नित्य एक शाश्वत बुद्धिका स्थान सर्वज्ञ जगत्का स्रष्टा और संहारकर्त्ता जीवोंके शुभाशुभ कर्म फलका दाता और जीवोंको स्वर्ग नरकमें पहुंचानेवाला ऐसा ईश्वर माना है। बौद्धमतमें दुःख समुदय मार्ग और निरोध चार आर्यसत्य नामा तत्त्वोंका उपदेष्टा, अपने तीर्थके निकारादिके हुए पुनः संसारमें अवतार धारण करनेवाला,ऐसा परमेश्वर माना है॥

प्र०—ईश्वरके अस्तित्वमें युक्ति और शास्त्रद्वारा क्या कथनहै?

उ०-ईश्वरके अस्तित्वमें यह प्रमाण है, कि जो इस जगत्में व्युत्पत्तिवाला शुद्धपद, अर्थात् समास रहित अर्थवाला एक पद है तिसका वाच्य अर्थ अवश्यमेव अस्तिरूप है जैसे घट, पट, जीव, धर्म, पुण्य, पाप, मोक्ष, आत्मा, संसारादि और जो जो दो पद अर्थात् समासांतपद हैं उनका वाच्यार्थ अस्तिरूप होवे भी और ना भी होवे, जैसे गोशृंग, महिषशृंग, राजपुत्र, इत्यादि दो पदोंका वाच्यार्थ अस्तिरूप ह, और शसशृंग, अश्वशृंग, नरशृंग, बंध्यापुत्र इत्यादि पदोंका वाच्यार्थ नास्तिरूप है, ईश्वर जो पद है सो शुद्ध एकपद है इसवास्ते ईश्वर पदका वाच्यार्थ ईश्वरभी अवश्यमेव अस्तिरूप है, तथा चागमः-ईश्वर इति पदं सत् विद्यमानं कस्मात् शुद्धपदत्वात् एक पदत्वादित्यर्थः परं ख कुसुमवदाकाश कुसुमवदसद विद्यमानं न अयं भावः समस्तलोके यस्ययस्य पदार्थ स्यैकपदं नाम भवति स पदार्थोस्त्येव यथा घट पट लकुटादिः एवमीश्वरस्यापि ईश्वर इति एक पदं नाम अतः कारणादीश्वरो स्त्येव न पुनराकाश कुसुमवन्नास्ति यत आकाश कुसुमस्यैक पदं नाम नास्ति किंतु द्विपदं नामास्ति यद्यत् द्विपद नामवस्तु भवति तत्तदेकांते न विद्यमानं न भवति किंतु किंचिद्र गोशृंग महिषशृंगादिवद्विद्यमानमस्ति किंचित्पुनः खरशृंग तुरंगमशृंगाकाशकुसुमादिवदविद्यमानं तत ईश्वरइति पदमेकपदत्वादस्त्येवेत्यनुमानप्रमाणेनेश्वर सत्ता स्थापिता ॥

तथान्यत्रापि-ईश्वरसिद्धावेवोपपत्यन्तरमाह-ईश्वर इत्ये तद्वचनं सार्थकमिति प्रतिज्ञा व्युत्पत्तिमत्वे सति शुद्धपदत्वादिहयद्व्युत्पत्तिमत्वे शुद्धपदं तदर्थवद् दृष्टं यथा घटादिकं तथा चेश्वर पदं तस्मात्सार्थकं यत्तु सार्थकं न भवति तद्व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदं च न

भवति यथा डित्थादिकंच खरविषाणादिकं च नचतथेश्वरपदंतस्मा त्सार्थकं यद्व्युत्पत्तिमन्न भवति तच्छुद्धपदमपि सन्न सार्थकं यथा डित्थादि पदमिति हेतोरनैकान्तिकतापरिहारार्थं व्युत्पत्तिमत्त्व विशेषणं द्रष्टव्यं यदपि शुद्धपदं न भवति किंतु सामासिकं व्युत्पत्तिमत्वे सत्यपि सार्थकं न भवति यथा खरविषाणादिकमिति शुद्धत्व विशेषणम् ॥

और जैनमतके शास्त्रोंमें अरिहंत सिद्ध परमेश्वर माने हैं बौद्ध मतमें बुद्ध भगवान् परमेश्वर, नैयायिक वैशेषिकमतमें शिव परमेश्वर, और वेदमें जो कुछ दीखता है सोही परमेश्वर माना है ॥

प्र०-ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता और रक्षक है इसमें क्या प्रमाण है ?

उ०-ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता और रक्षक प्रत्यक्ष वा अनुमान किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है ॥

पूर्वपक्ष-ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है ऐसे जो मानिये तो क्या दूषण है ॥

उत्तरपक्ष-ईश्वरको जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानने से बहुत दूषण आते हैं ॥

पूर्वपक्ष-तुमतो अपूर्व बात सुनाते हो हमने तो कभी भी नहीं सुना जो ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानने में दूषण आता है अबतो आपको बताना चाहिये कि ईश्वरको जगत् का कर्त्ता माननेसे अमुक दूषण आता है ॥

उत्तरपक्ष-हे भव्य ! प्रथम तुम यह बात कहो कि तुम कौनसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानते हो ?

पूर्वपक्ष-क्या ईश्वरभी कई तरहके हैं जो आप हमसे ऐसा पूछते हो ?

उत्तरपक्ष—क्या तुम नहीं जानते जो दो तरहके ईश्वर मताव-लंबीयोंने माने हैं ? एक तो जगदुत्पत्तिसे पहिला केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादानादिक कोई भी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी एकही शुद्धबुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था एकैक जीवोंको तो ऐसा ईश्वर जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अभिमत है और दूसरोंने तो जीव (१) परमाणु (२) आकाश (३) काल (४) दिशादि सामग्री (५) वाला एतावता उक्तविशेषण संयुक्त एक तो ईश्वर और दूसरी सामग्री जिससे जगत् रचा जावे यह दोनों वस्तु अनादि हैं अर्थात् एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करनेकी सामग्री यह दोनों किसीने बनाये नहीं ऐसे माने हैं,तुमको इन दोनों मतोंमें से कौनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्ष—हमको तो प्रथममत सम्मत है,क्योंकि वेदादि शास्त्रों में ऐसा लिखा है तथाहि ॥

"एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायु वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नंअन्ना द्रेतः रेतसः पुरुषः सवा एष पुरुषोन्नरसमयः" यह तैत्तिरीय शाखा की श्रुति है, तथा "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहुःस्यां प्रजायेयेति"यह श्रुति छांदोग्य उपनिषद्की है तथा "ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजो न व्योमपरोयत् किमावरीवः कुहकस्य शर्मणयम्भः किमासीद्गहनं गभीरं" यह श्रुति ऋग्वेद की है, "आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षतलोका नुसृजइति"यह ऐत्तरेय ब्राह्मणकी श्रुति है इत्यादि अनेक श्रुतियों से सिद्ध होता है, जो सृष्टिसे पहिले केवल एकईश्वरही था, न जगत् था और न जगत्का कारण था एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप

था तथा ईसाई वा मुसलमान मतवाले भी ऐसेही मानते हैं इस हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते हैं ॥

उत्तर–तुमारा यह कहना ईश्वरको वड़ा कलंकित करता है ॥

पूर्वपक्ष–जगत्के रचनेसे ईश्वरको क्या कलंक प्राप्त होता है?

उत्तर–प्रथमतो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतुसे जगत् कभी उत्पन्न नहीं होसकता, जिसका उपादानकारण नहीं सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं होसकता, जैसे गधेका सींग ॥

पूर्वपक्ष–ईश्वरने अपनी शक्ति अर्थात् कुदरतसे जगत्को रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है सोई उपादान कारण है ॥

उत्तर–ईश्वकी जो शक्ति है सो ईश्वरसे भिन्न है वा अभिन्न है ? जेकर कहोगे भिन्न है तो फेर जड़ है वा चेतन है ? जेकर कहोगे जड़ है तो फेर नित्य है वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है तो फेर यह जो तुम्हारा कहना था कि सृष्टिसे पहिले एक केवल ईश्वर था दूसरा कुछ भी नहीं था, यह ऐसा हुआ जैसे उन्मत्तोंका वचन अपने वचनको आपही झूठा किया, जेकर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादाकारण और ईश्वरकी शक्ति हुई तिस शक्तिकी उत्पन्न करनेवाली और शक्ति हुई इसी तरह करतां अनवस्था दूषण आता है, जेकर कहोगे चेतन है तो फिर नित्य है वा अनित्य है ? दोनों ही पक्षोंमें पूर्वोक्त अपरापर स्ववचन व्याहत और अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसे अभिन्न है, तो सर्व वस्तुको ईश्वरही कहना चाहिये। जव सर्व वस्तु ईश्वरही होगई तो फिर अच्छा और बुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊंच, नीच, रंक, राजा, सुशील और दुशील, राजा, प्रजा, चोर, और साधु, सुखी और दुखी, इत्यादि सर्वकुछ ईश्वर आपही बना

तब तो ईश्वर विचारेने जगत् क्या रचा, आपही अपना सत्यानाश कर लिया, यह प्रथम कलंक ईश्वरको लगता है,(२)तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बनगया तो फिर वेदादि शास्त्र क्यों बनाये। और उनके पढ़नेसे क्या फल हुआ ? यह दूसरा कलंक (३) तथा जब वेदादि बनाये तब अपने आपको ज्ञानी होने वास्ते,तो इससे प्रथम तो अज्ञानी सिद्ध हुआ यह तीसराकलंक,(४)जब शुद्धसे अशुद्ध बना और जगत् रूप होनेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई, यह चौथा कलंक (५) कोई वस्तु जगत्में अच्छी वा बुरी नहीं, यह पांचवां कलंक (६) फिर क्यों अपने आपको संकटमें डाला,यह छठाकलंक इत्यादि अनेक कलंक आप ईश्वरको लगाते हो॥

पूर्वपक्ष–ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतु से ईश्वर विनाही उपादानकारणके जगत्को रच सक्ता है॥

उत्तरपक्ष–यह जो आपका कथन है, इसको आपकी प्यारी भार्या वा मित्रही मानेगा, परंतु प्रेक्षावान् कोई भी नहीं मानेगा क्योंकि इस आपके कहनेमें कोईभी प्रमाण नहीं है, परंतु जिसका उपादानकारण ही नहीं, वह कार्य कभी भी नहीं होसक्ता, जैसे गधेका सींग, ऐसा प्रमाण आपके कहनेको बाधनेवाला तो है, परंतु साधनेवाला कोई भी नहीं है, यदि पक्षपात हठकरके स्वकपोलकल्पितहीको मानोगे, तो परीक्षावालोंकी पंक्तिमें कभी भी न गिने जावोगे, इस आपके कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्र का प्रहार पड़ता है, सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होजावे,तो सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे, तो सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, इनदोनोंमेंसे जब

तक एक सिद्ध न होगा, तवतक दूसरा कभी भी सिद्ध नहीं होगा इस आपके कहनेमें चक्रक दूषण होता है, सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होवे, या सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे जब सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, तब सृष्टिसे पहिले सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टि कर्त्ता सिद्ध होवे, ऐसे प्रगट चक्रक दूषण है॥

पूर्वपक्ष–ईश्वर तो प्रत्यक्षही प्रमाणसे सिद्ध है. तो फिर आप उसको सृष्टिका कर्त्ता क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष–ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता यदि प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होजावे, तो किसीकोभी अमान्य नहीं है, और आपका हमारा ईश्वर विषयिक विवादभी कभी न हो; क्योंकि प्रत्यक्षमें वाद विवाद नहीं होता है, और ईश्वरको प्रत्यक्ष देखना आपके वेद मंत्रोंसे भी विरुद्ध है, तथा च वेदमंत्रः ॥

अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः ॥
स वेत्तिविश्वंनचतस्यास्तिवेत्ता, तमाहुरग्र्यंच पुरुषं पुराणम् ॥

भावार्थ–इस वेद मंत्रसे साफ़ २ प्रगट होता है, किईश्वरके जाननेवाला कोई भी नहीं है ॥

पूर्वपक्ष- तो फ़िर विना कर्त्ताके जगत् कैसे होगया, इस अनु-मान और प्रमाणसे ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो आप क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष–इस आपके अनुमानको हम दूसरे ईश्वरपक्षमें खंडन करेंगे, ऐसे उक्त प्रकारसे एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, ऐसे सृष्टिसे पहले परमेश्वर सिद्ध नहीं हुआ, तोभी हम आगे चलते हैं, कि जब ईश्वरने इन जीवोंको रचा था, तो क्या (१) निर्मल रचे थे (२) पुण्य वाले रचे थे (३) पापवाले रचे थे (४) मिश्रत

पुण्य पाप अर्द्धाअर्द्ध रचे थे (५) पुण्य थोड़ा पाप अधिक, ऐसे रचे थे (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे; वाले रचे थे? यदि प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे, तो जगत्में सर्व जीव निर्मल ही चाहियें, फिर वेदादि शास्त्र द्वारा उनको उपदेश करना वृथा है, और वेदादि शास्त्रोंका कर्त्ता भी मूढ़ही सिद्ध होगा, क्योंकि जब पहलेही जीव निर्मल थे, तो फिर उनके वास्ते वेदादि शास्त्र क्यों रचे, जो वस्त्र निर्मल होते हैं उनको कोई भी बुद्धिमान् नहीं धोता है, यदि धोवे तो महामूढ़ अज्ञानी है, इसलिये जो निर्मल जीवोंके उपदेश वास्ते वेदादि शास्त्र रचता है, वह भी महामूढ़ अज्ञानी है॥

पूर्वपक्ष—ईश्वर परमात्माने तो जीवोंको शुद्ध निर्मल अच्छाही बनाया था, परंतु जीवोंने अपनी इच्छासे अच्छा वा बुरा कामकर लिया तो इसमें ईश्वर परमात्माका क्या दोष है?

उत्तरपक्ष—जब ईश्वरने जीवोंमें अच्छा वा बुरा काम करने की शक्तिही नहीं रची, तो फिर जीवोंको पुण्य वा पाप करनेकी शक्ति कहांसे आ गई?

पूर्वपक्ष—शक्तियां तो जीवोंमें सर्व ईश्वरहीने रची हैं, परंतु जीवोंको बुरे काम करनेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त होजाते हैं, जैसे कोई गृहस्थी अपने प्रियपुत्र बालक के खेलने वास्ते एक खिलौना देदेवे, और फिर वह बालक उस खिलौनेसे अपनी आंख फोड़ लेवे, तो फिर इसमें माता पिताका क्या दोष है? इसीतरह ईश्वरने जीवोंको जो हाथ, पग, प्रमुख दिये हैं, सो नित्य प्रति केवल धर्मही करनेके वास्ते दिये हैं, फिर जीव यदि अपनी इच्छानुसार पाप करलेवें, तो इसमें ईश्वरका क्या दोष है?

उत्तरपक्ष–ऐ भोले जीव ! यह जो आपने बालकका दृष्टांत दिया है, सो यथार्थ नहीं है, क्योंकि बालकके माता पिताको यह ज्ञान नहीं है, कि यह खिलौना जो हम बालकके खेलने वास्ते देते हैं, इस खिलौनेसे हमारा बालक अपनी आंख फोड़ लेगा, यदि बालकके माता पिताको यह ज्ञान होता, कि हमारा बालक इस खिलौनेसे अपनी आंख फोड़ लेगा,तो उसके माता पिता कभी भी उसके हाथमें खिलौना न देते, यदि जानबूझ कर देवें, तो वह उसके माता पिता नहीं, किंतु वह उस बालकके परमशत्रु हैं, इसी तरह ईश्वर माता पिता तुल्य है, और हम तुम सब उसके बालक हैं, यदि ईश्वर जानता था, कि मैंने इसको रचा, और हाथ, पग, मन, इंद्रियादि सामग्री दी है,परंतु इस जीवने इस सामग्रीसे बहुत पाप करके नरकमें जाना है, तो फिर ईश्वरने उस जीवको क्यों रचा? यदि कहोगे, कि ईश्वर यह बात नहीं जानता था, कि मेरी धर्म करनेकीदी हुई सामग्रीसे पाप करके यह जीव नरकमें जायगा, तो फिर ईश्वर आपके कहनेसे अज्ञानी मूढ़ असर्वज्ञ सिद्ध होता है, यदि कहोगे कि ईश्वर जानता था,कि यह जीव मेरी दी हुई सामग्री से पाप करके नरकमें जायगा, तो फरमाइये कि फिर हमारे रचने वाला ईश्वर परमशत्रु हुआ कि नहीं, विना प्रयोजन रंक जीवोंको सामग्री द्वारा पाप कराके क्यों उनको नरकमें डाला ? जब सामग्री द्वारा प्रथम पाप कराया, और फिर नरक पात करनेका दंड दिया, इस कहनेसे ईश्वरसे अधिक अन्यायी और कौन होगा, क्योंकि पहले तो उसजीवको रचा,और फिर नरकमें डाला,बसयहीआपने ईश्वरको अन्यायी,असर्वज्ञ,निर्दयी,अज्ञानी,वृथा मेहनती रूपकलंक दिये,इसलिये ईश्वरने निर्मल जीव नहीं रचे,इति प्रथम पक्षोत्तर ॥

दूसरा प्रश्नोत्तर—यदि कहोगे कि ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे हैं, तो यह कहना भी आपका मिथ्या है, क्योंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे, तो गर्भमें ही अंधे, लंगड़े, लूले, बधिरे, कुरूप नीच वा निर्धनके कुलमें पैदा होना, जावजीव (सारी उमर) दुःखी रहना, खाने पीनेको पूरा२ न मिलना, महाकष्ट उठा मेहनत करके पेट भरना, यह पुण्यके उदयसे नहीं होसक्ते, और विनाही पुण्य किये ईश्वरने जीवको पुण्य क्यों लगादिया! यदि विनाही पुण्य किये ईश्वरने जीवोंको पुण्य लगा दिया, तो ऐसे विनाही धर्म किये ईश्वर जीवोंको स्वर्ग या मोक्ष क्यों नहीं पहुंचा देता? शास्त्रोपदेश कराके, भूखे मारके, तृष्णा छुड़ाके, राग, द्वेष मिटाके घर बार छुड़ाके, साधु, संत, महात्मा बनाके, टुकडे मंगाके, दया, दम, दान, सत्य वचन, चोरीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादि अनेक साधन कराके फिर स्वर्ग मोक्ष पहुंचाना, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खड़ा करके जीवोंको क्यों दुःख दिया, इससे तो ऐसा मालूम होता है, कि ईश्वरको कुछभी सूझ बूझ नहीं है॥

तीसराप्रश्नोत्तर—यदि कहोगे कि ईश्वरने पाप संयुक्तही जीव रचे हैं, तो फिर पाप किये विनाही जीवोंके पाप लगा दिया, तो जब ईश्वरनेही हमारा सत्यानाश किया, तो फिर हम किसके आगे फरयाद करें, कि विना ही गुनाह ईश्वरने यह पाप हमको लगा दिया, आप इसको मनह करो॥ जो विनाही करे गुनाहके पाप लगादे, ऐसे अन्यायी ईश्वरका तो भूलकरभी नाम न लेना चाहिये। यदि ईश्वरने पाप संयुक्तही सब जीव रचे हैं, तो राजा मंत्री, श्रेष्ठ सेनापति, धनवानोंके घर पैदा होना, निरोग शरीर, सुंदररूप, सुंदर शरीर, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्त्ति, पंचेंद्रियविषय भोग, इत्यादि

सामग्री पाप उदयसे मिलनी कभी भी संभव नहीं होती,इसलिये जीवोंको ईश्वरने केवल पापवाला नहीं रचा ॥

चतुर्थ पक्षोत्तर–यदि कहोगे कि अर्द्धा अर्द्ध पुण्य पापवाले जीव ईश्वरने रचे हैं, यह पक्ष भी आपका वृथा है, क्योंकि आधे सुखी,आधे दुःखी, ऐसे भी सब जीव देखनेमें नहीं आते हैं ॥

पंचम पक्षोत्तर–पांचवां पक्ष भी आपका ठीक नहीं है,कि सुख थोड़ा, और दुःख बहुत, ऐसे भी सब जीव हमारे देखनेमें नहीं आते हैं, परंतु सुख बहुत और दुःख थोड़ा,ऐसे बहुत जीव देखने में आते हैं ॥

षष्टम पक्षोत्तर–छटा पक्ष भी समीचीन नहीं, सुख बहुत,और दुःख थोड़ा, ऐसे भी सब जीव देखनेमें नहीं आते हैं; दुःख बहुत और सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखनेमें आते हैं। इन हेतुओं से ईश्वर जीवोंको किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सक्ता, तो फिर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्योंकर सिद्ध होसक्ता है ? कभी नहीं हो सक्ता, जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी, तब ईश्वरको क्या दुःख था ?और जब सृष्टि रची, तब क्या सुख प्राप्त हुआ ?

पूर्वपक्ष–ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता है, जो उस न्यूनताके पूर्ण करनेको सृष्टि रचे ? वह तो जगतमें अपनी ईश्वरता प्रगट करनेको सृष्टि रचता है ॥

उत्तरपक्ष––जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी, तो क्या तब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी ? और जब सृष्टि रची, तब ईश्वरता प्रगट हुई, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं हुई थी, तब तो ईश्वर बड़ा उदास और असंपूर्ण मनोरथ,ईश्वरता को प्रगट करनेमें विह्वल था, इस हेतुसे ईश्वरको अवश्य दुःख

होना चाहिये, जब ईश्वर सृष्टिसे पहले ऐसा दुःखी था, तो खाली क्यों बैठ रहा था? इस सृष्टिसे पहले अपर सृष्टि रचकर अपना दुःख क्यों दूर न किया?

पूर्वपक्ष—ईश्वरने जो सृष्टि रची है, सो जीवोंसे धर्म कराके उन को अनन्त सुख देगा, इस परोपकारके लिये ईश्वरने सृष्टि रचीहै॥

उत्तर पक्ष—धर्म कराके जीवोंको सुख देना, यह आपके फरमाने से परोपकार हुआ, परन्तु जो पाप करके नरकमें गये, उनपर क्या उपकार हुआ? क्या उनको दुखी करनेसे ईश्वर परोपकारी होसक्ता है?

पूर्वपक्ष—उनको नरकसे निकालकर फिर स्वर्गमें स्थापन करेगा॥

उत्तरपक्ष—तो फिर प्रथमही नरकमें क्यों जाने दिया?

पूर्वपक्ष—ईश्वर ही सब कुछ पुण्य पापादि कार्य कराता है, जीवोंके कुछभी आधीन नहीं, ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीको पुतली वाला जैसे चाहता है, वैसे नचाता है, पुतलीके कुछ आधीन नहीं॥

उत्तर पक्ष—जब जीवोंके कुछ आधीन नहीं, तो जीवोंको अच्छे बुरे कामोंका फलभी नहीं होना चाहिये, जैसे कोई सरदार किसी नौकर को कहे, कि तुम यह काम करो, फिर नौकर सरदारके कहने से वह काम करे, और यदि वह काम बुरा हो, तो क्या फिर वह सरदार उस नौकरको कुछ दंड देसक्ता है? कदापि नहीं, ऐसे ही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवोंने पुण्य वा पाप करे, तो फिर पुण्य पापका फल जीवोंको नहीं चाहिये, जब पुण्य पाप जीवोंने न करे, तब स्वर्ग और नरक यह भी जीवोंको न होंगे, तो फिर जीवोंको नरक, स्वर्ग, तिर्यंच, और मनुष्य यह चारगति भी न होंगी, जब चारगति न होंगी, तब संसार भी न होगा, जब संसार न होगा,

तबतो वेद, पुराण, कुरान, तौरेत, जवूर, इंजील, प्रमुख शास्त्र भी न होंगे, जब शास्त्र न होंगे, तब शास्त्रोंके उपदेशक न होंगे, जब शास्त्रोंके उपदेशक भी न होंगे, तो ईश्वर भी नहीं, जब ईश्वरही नहीं, तो फिर सर्व शून्यता सिद्ध हुई, यह कलंक क्योंकर मिटेगा?

पूर्वपक्ष–यह जो जगत् है सो वाजीगरकी वाजीवत् है, और ईश्वर इसका वाजीगर है, सो इस जगत्को रचकर ईश्वर इस खेल से खेलता (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, पाप कुछभी नहीं है॥

उत्तरपक्ष–जब ईश्वरने क्रीड़ाके लियेही जगत् रचा है, तो फलभी क्रीड़ाही मात्र होना चाहिये, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे हैं जिनके देखनेसे दयाके वश होकर हमारे रूंगटे (रोम) खड़े होते हैं, तो फिर क्या ईश्वरको इनदुःखी जीवोंकोदेखकर दया नहीं आती? जब ईश्वरको दया नहीं तो फिर क्या निर्दयी भी कभी ईश्वर हो सकता है? और जो क्रीड़ा करनेवाला है, सो बालकके न्याई रागी, द्वेषी, अज्ञ होता है जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण हैं, जब आपही अवगुणोंसे भरा हुआहै तो वह ईश्वरही किस बात का? वह तो संसारी जीव है, और जब राग द्वेष वाला होगा, तब सर्वज्ञ कदापि नहीं होसकता, जब सर्वज्ञही नहीं, तो उसको ईश्वर कौन कह सकता है?

पूर्वपक्ष–जीवोंके करे हुए पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है इस हेतुसे ईश्वरको क्या दोष है? जैसा जिसने किया वैसा ही उसको फल दिया॥

उत्तरपक्ष–इस आपके कहनेसे यह संसार अनादि सिद्ध हो गया, परंतु ईश्वर कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ, वाह रे मित्र! तुम

ने अपने हाथसे अपना मुंह काला किया, क्योंकि जो जीव अब हैं और जो कुछ इनको यहां फल मिला है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ ठहरा, और जो पूर्व जन्म था, उसमें जो दुःख सुख जीवको मिला था, वह उससे पूर्व जन्ममें करा था इसी तरह पूर्व२ जन्ममें दुःख सुख करना और उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका भोगना इसीतरह संसार अनादि सिद्ध होता है, अब सोचना चाहिये कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर कैसे सिद्ध हुआ॥

पूर्वपक्ष–हमतो एकही परमब्रह्म परमार्थिक सद्रूप मानते हैं॥

उत्तरपक्ष–अगर एकही परमब्रह्म सद्रूप है, तो फिर यह जो सरल, रसाल, प्रियाल, हन्ताल, ताल, तमाल, प्रवाल, प्रमुख, पदार्थ अग्रगामीपने करके जो प्रतीत होते हैं, वह क्योंकर सत् स्वरूप नहीं हैं?

पूर्वपक्ष–यह पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या हैं तथाच अनुमान प्रपंच मिथ्या है प्रतीत होनेसे जो ऐसा है सो ऐसा है जैसे सीप चांदी रूप, वैसेही यह प्रपंच है, इस अनुमानसे प्रपंच मिथ्या रूप है, और एक ब्रह्मही परमार्थिक सद्रूप है॥

उत्तरपक्ष–हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसे आप तीक्ष्ण बुद्धिमान नहीं हो, यह जो प्रपंच आपने मिथ्यारूप मान रक्खा है सो मिथ्या तीन प्रकारका होता है, एकतो अत्यंत असत् रूप और दूसरा है तो कुछ और प्रतीत होवे और तरह, तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमें से आप कौनसा मिथ्यारूप प्रपंच मानते हैं?

पूर्वपक्ष–इन तीनों पक्षोंमें से प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकार ही नहीं, इसलिये मैं तो अनिर्वाच्यपक्ष मानता हूं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्या रूप है॥

उत्तरपक्ष-प्रथम तो आप यह कहो, कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? एतावता आप अनिर्वाच्य किस वस्तुको कहते है? (१) क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नहीं है? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है? यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है, और जो दूसरा पक्ष है, सो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है? वा पदार्थ नहीं है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं, सरल, रसाल, ताल, तमाल, प्रमुख का ज्ञान तो प्राणी प्राणीको प्रतीत है, और दूसरा पक्ष तो पदार्थ भाव रूप नहीं है? कि अभाव रूप नहीं है? अगर कहोगे पदार्थ भाव रूप नहीं, और प्रतीत होता है, तो आपको विपरीताख्याति माननी पड़ी, और अद्वैत वादियोंके मतमें विपरीताख्याति माननी महा दूषण है, अथ दूसरा पक्ष, जो पदार्थ अभाव रूप नहीं, तो भावरूप सिद्ध हुआ, तबतो सत् ख्याति माननी पड़ी, और जब अद्वैत वाद मत अंगीकार किया और सत् ख्याति माननी पड़ी तब तो सत् ख्यातिके माननेसे अद्वैतमतकी जड़को कुल्हाड़ेसे काटा, कदापि अद्वैतमत सिद्ध नहीं होगा॥

पूर्वपक्ष-भावरूप तथा अभावरूप यह दोनोंही प्रकारसे वस्तु नहीं॥

उत्तरपक्ष-हम आपसे पूछते हैं, जो भाव और अभाव इन दोनों का अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है, वोही आपने माना है? वा इससे विपरीत और तरहसे आपने माना है? यदि प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां भावका निषेध करोगे, वहां अवश्यमेव अभाव कहना पड़ेगा, और जहां अभावका निषेध करोगे वहां अवश्यमेव भाव कहना पड़ेगा, जो परस्पर विरोधिहै, इसमें यदिएकका निषेध करोगे,

तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पड़ेगी, अनिर्वाच्यता तो जड़ मूलसे नष्ट होगई। यदि दूसरापक्ष मानोगे तो इसमें हमारी कुछ हानि नहीं, क्योंकि अलौकिक एतावता, आपके मन कल्पित शब्द और शब्दका निमित्त जो नष्ट होजावेगा, तो लौकिक शब्द और लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फिर अनिर्वाच्य प्रपंच किस तरहसे सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंचमिथ्या कैसे सिद्धहुआ, तब एकही अद्वैतब्रह्म कैसे सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्ष–हमतो जो प्रतीत न होवे, उसको अनिर्वाच्य कहते हैं।

उ०–इस आपके कहनेमें बहुत विरोध आताहै यदि प्रपंचप्रतीत नहीं होता, तो आपने अपने प्रथम अनुमानमें प्रपंचको प्रतीयमान हेतु स्वरूपपने क्योंकर ग्रहण किया? और प्रपंचको अनुमान करते समय धर्मीपने क्यों ग्रहण किया? अगर कहोगे धर्मीपने वा प्रतीयमान हेतुपने प्रपंचको ग्रहण करनेमें क्या दूषण है? तो फिर आपने जो यह ऊपरप्रतिज्ञाकी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहींहोता, उसको अनिर्वाच्य कहते हैं, तो फिर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं, तब यातो भावरूप प्रपंचसिद्ध होगा, या अभावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, इन दोनोंही पक्षोंमें एकरूप प्रपंचके माननेसे पूर्वोक्त विपरीताख्याति तथा सत्ख्यातिरूप दोनों दूषण फिर आपके पीछे लगे रहेंगे भागकर कहां जाओगे, हम फिर आपसे पूछते हैं, कि यह जो आप इस प्रपंचको अनिर्वाच्य मानतेहो, सो प्रत्यक्षप्रमाणसे मानतेहो? या अनुमान प्रमाणसेमानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाणतो इस प्रपंचको सत्रूपही सिद्ध करता है, जैसा २ पदार्थ है, वैसा २ ही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है, और प्रपंच जो है सो परस्पर न्यारी २ जो वस्तुहैं सो अपने २ स्वरूपमें

भाव रूप हैं, और दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षा से अभाव रूप हैं इस इतरेतर विविक्त वस्तुओंको ही प्रपंचरूप माना है, तो फिर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचको अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्ष–पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है उसको प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं करसकता, क्योंकि प्रत्यक्ष तो विधायक ही है, यदि प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करें, तो हमारे पक्षको बाधक ठहरे, परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणसे इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करनेको कुंठ है॥

उ०–यह भी आपका कहना असत्य है, अन्य वस्तुके स्वरूप के विना निषेधेविनावस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णोंसे रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूप बोध होगा, तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करके यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण किया जायगा, तब तो अवश्य अपर वस्तुके स्वरूपका निषेध भी वहां जाना जायगा, यदि अन्य वस्तुके निषेधको अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा, तो उस वस्तुके विधि स्वरूपको भी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करना है, सोई अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करना है जब प्रत्यक्ष प्रमाण विधि और निषेध दोनों ही को ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्या रूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्या रूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे न सिद्ध हुआ तब तो परमब्रह्म रूप एकही अद्वैततत्त्व कैसे सिद्ध हुआ? तथा जो आप प्रत्यक्षको नियम करके विधायक ही मानोगे तब तो विद्यावत् अविद्याकी भी विधि आपको माननी पड़ेगी सो यह ब्रह्म अविद्या रहित प्रत्यक्ष प्रमाणसे ग्रहण किया, तबतो अविद्या भी प्रत्यक्ष से निषेध ग्रहण होगी फिर आपका यह कहना कि

"प्रत्यक्ष जो है,सो विधायक ही है, परंतु निषेधक नहीं" ऐसे वचन कहने वालोंको क्यों न उन्मत्त कहना चाहिये ? अब जो आगे अनुमान कहेंगे, तिस करके भी पूर्वोक्त आपके अनुमानका पक्ष बाधित है,सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है,असत् से विलक्षण होनेसे,जो असत्से विलक्षण है,सो ऐसा है जैसे आत्मा तैसे ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो आपका हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसे ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, यदि कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं, तब तो आप को गूंगे बनना ठीक है, क्योंकि ब्रह्म विना अपर तो कुछ है नहीं, और ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फिर आपको हम गूंगे के विना और क्या कहें ? प्रथम अनुमानमें जो आपने सीपका दृष्टांत दिया था, सो साध्य विकल है. क्योंकि जो सीप है सो भी प्रपंचके अंतरगत है, और आपतो प्रपंचको मिथ्यारूप सिद्ध किया चाहते हो, यह कभी नहीं होसक्ता है, जो साध्य होवे सोई दृष्टांत में कहा जावे, जब सीपका भी अभी तक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसको दृष्टांतमें क्यों लाये ? तथा हम आपको पूछते हैं कि यह जो आपने प्रथम अनुमान,प्रपंचके मिथ्या साधनको किया था,सो अनुमान इस प्रपंचसे भिन्न है वा अभिन्न है? यदि कहोगे भिन्न है तो फिर सत्य है, वा असत्य ? यदि कहोगे सत्य है, तो इस अनुमान सत्यकी न्यांई प्रपंचभी सत्यही स्वरूप है,यदि कहोगे असत्य स्वरूप है तो फिर क्या शून्य है ? वा अन्यथा ख्यात है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनों पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं हैं, मनुष्यके सींगकी तरह, तथा सीपके रूपेकी तरह, और

तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है, इसका तो संभव ही नहीं है, सो अपने साध्यको कैसे साधेगा ?

पूर्व०-हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इसकारण असत्य नहीं, फिर अपने साध्यको क्योंकर नहीं साध सक्ता ? अपितु साध ही सक्ता है ॥

उ०-हम आपसे पूछते हैं कि इस व्यवहार सत्यका क्या स्वरूप है ? व्यवहृतीति (व्यवहारः) ऐसे जो व्युत्पत्ति करिये तबतो ज्ञानका ही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानसे जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ, जब प्रपंच सत् सिद्ध हुआ, तब तो एकही परमब्रह्म सद्रूप अद्वैत तत्व किसी तरह भी सिद्ध नहीं होसक्ता, यदि कहोगे, व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फिर हम आपसे पूछते हैं, जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फिर शब्द स्वरूपसे सत् है, वा असत् है ? यदि कहोगे शब्द सत् स्वरूप है, तो शब्दकी तरह प्रपंचभी सत् स्वरूप है, यदि कहोगे असत् स्वरूप शब्द है, तो फिर ब्रह्मादि शब्दसे कहे हुये कैसे सत् स्वरूप होसकेगें ? क्योंकि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करने वा कहनेका हेतु कभी नहीं होसक्ता ॥

पूर्व०- जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रिया विक्रियादिक व्यवहारका जनक होनेसे सत्यरूपक माना जाता है, तैसेही हमारा अनुमान यद्यपि असत् स्वरूपहै तोभी जगत्में सत् व्यवहार करके प्रवर्त्तक होनेसे व्यवहारसत् है, इसवास्ते अपने साध्यका साधक है।

उ०-हे भव्य ! इस आपके कहनेसे आपका अनुमान परमार्थिक असत् स्वरूप है, फिरतो जो दूषण असत् पक्षमें दिये हैं, सो सर्व यहां पड़ेंगे, यदि कहोगे कि हम प्रपंचसे अभेद अनुमानको

मानते हैं, तब तो प्रपंचकी तरह अनुमानभी मिथ्या रूप ठहरा, तब तो अपने साध्यको कैसे साध सकेगा ? इस पूर्वोक्त विचारसे प्रपंच मिथ्या रूप नहीं, किंतु आत्माकी तरह सत्‌रूप है, तो फिर एकही ब्रह्म अद्वैततत्व है यह आपका कहना क्योंकर सत्य हो सक्ता है ? कदापि नहीं होसक्ता ॥

पूर्व०–हमारी उपनिषदोंमें तथा शंकरस्वामीके शिष्य आनंद-गिरि शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखते हैं कि "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोई इस सर्व जगत्‌का कारण है, कारणभी कैसा उपादान रूप है, उपादानकारण उसको कहते हैं कि जो कारण होवे सोई कार्य रूप होजावे इस कहनेसे यह सिद्ध हुआ, जो कुछ जगत्‌में है सो सर्व कुछ परमात्माही आप बनगया, तब तो जगत् परमात्मा रूपही है, फिर आप सृष्टिकर्त्ता ईश्वर क्यों नहीं मानते ?

उ०–वाह रे नास्तिक शिरोमणि ! आप अपने कहनेको कभी विचार सोचकर कहते हो, वा नहीं ? इस आपके कहनेसे तो पूर्ण नास्तिकपना आपके मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मा रूपही है, तब तो न कोई पापी है, न कोई धर्मी है, न कोई ज्ञानी है न कोई अज्ञानी है, न तो नरक है न स्वर्ग हैं, साधु भी नहीं, और चोर भी नहीं, सत्य शास्त्र भी नहीं, और मिथ्या शास्त्रभी नहीं, तथा जैसे गोमांस भक्षी, तैसे ही अन्नभक्षी है, जैसे स्वभार्यासे कामभोग सेवन किया, तैसेही माता, बहिन, बेटीसे किया, जैसे चंडाल, तैसे ब्राह्मण, जैसे गद्धा, तैसे सन्यासी, क्योंकि जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्मा ही ठहरा, तबतो सर्व जगत् एक रस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोई है नहीं ?

पूर्व०-हम एक ब्रह्म मानते हैं, और एक माया मानते हैं, सो आपने जो पूर्वोक्त बहुतसे आल जंजाल लिखे हैं सो सर्व माया जन्य है, और ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है॥

उ०-हे अद्वैतवादी! यह जो आपने पक्षमाना है सो बहुत असमीचीन है, यथा माया जो है सो ब्रह्मसे भेद है, वा अभेद है? यदि भेद है तो जड़ है वा चेतन है? यदि जड़ है तो फिर नित्य है वा अनित्य है? यदि कहोगे नित्य है तो अद्वैतमतके मूलहीको दाह करती है क्योंकि जब ब्रह्मसे भेद रूप हुई और जड़रूप हुई और नित्य हुई फिर तो आपने द्वैतपंथ आपही अपने कहनेसे सिद्ध कर लिया, और अद्वैत पंथ जड़मूलसे कट गया, यदि कहोगे कि अनित्य है, तो द्वैतता दूर कभी नहीं होगी,क्योंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है और जो कार्य है सो कारणजन्य है तो फिर उस मायाका उपादानकारण कौन है? सो कहना चाहिये यदि कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है और अद्वैत तीनोंकालमें कदापि सिद्ध नहीं होगा यदि ब्रह्महीको उपादानकारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सब कुछ बन गया। और पूर्वोक्त दूषण आया,यदि मायाको चैतन्य मानोगे तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, यदि मायाको ब्रह्मसे अभेद कहोगे तब तो ब्रह्मही कहना चाहिये. माया नहीं कहना चाहिये॥

पूर्व०-हमतो माया को अनिर्वचनीय मानते हैं॥

उ०-इस अनिर्वचनीय पक्षका ऊपर खंडन हो चुका है, तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है,तिसमें निस् जो उपसर्ग है तिसका अर्थ तो निषेध रूप किया है कलापके व्याकरणमें शेष जो शब्द है, सो यातो भावका वाचक है या अभावका वाचक है,जब भावको निषेध

करोगे,तब अभाव आजावेगा,और जब अभावका निषेध करोगे तो भाव आजावेगा,यह भावाभाव दोनों वर्जके तीसरा वस्तुका रूप कोई नहीं। अनिर्वचनीय जो शब्द है,सो दंभी पुरुषोंने छलरूप रचा प्रतीत होता है, इसलिये द्वैत ही सिद्ध हुआ अद्वैत नहीं॥

पूर्व०–'पुरुष एवेदं' इत्यादि श्रुतियोंसे अद्वैत ही सिद्ध होता है॥

उ०–यह भी तुम्हारा कहना असत्य है,क्योंकि यदि पुरुषमात्र रूप अद्वैत तत्व होवे, तब तो यह जो दिखाई देता है कोई सुखी, कोई दुखी, वह सर्व परमार्थसे असत् होजावेंगे, जब ऐसे होगा, तब तो यह जो कहना है "प्रमाणतो अधिगम्य संसार नैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि" अस्यार्थ–संसार का निर्गुणपणा प्रमाणसे जानकर तिस संसारसे विमुख बुद्धि हो करके तिस संसारके उच्छेदके ताईं प्रवृत्ति करे सो आकाशके फूल की सुगंधिका वर्णन करने समान है क्योंकि जब अद्वैत रूपही तत्व है, तब तो नरकादि भव भ्रमण रूप संसार कहां रहा? जिस संसारको निर्गुण जानकर तिसके उच्छेद करनेकी प्रवृत्ति होवे॥

पूर्व०–तत्वतः पुरुष अद्वैतमात्र ही है, और यह जो संसार निर्गुण वर्णन किया है, सो सदा सर्व जीवोंको जो प्रति भासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग ऊंचे नीचे जैसे प्रतीत होते हैं, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है, परंतु चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग ऊंचे नीचे भ्रांति रूप है वा भ्रांतिजन्य हैं॥

उ०–यह जो आपकाकहना है, सो असत्य है, इस बातमें कोई वास्तव प्रमाण नहीं है तत् यथा यदि अद्वैत सिद्ध करने वास्तेकोई पृथक् भूत प्रमाण मानोगे तबतो द्वैतापत्ति होगी, क्योंकि प्रमाण के विना किसीका भी मत सिद्ध नहीं होता, जेकर प्रमाणके विना

ही सिद्ध मानोगे, तबतो सर्ववादी अपने अपने अभिमतको सिद्ध कर लेवगे, तथा भ्रांतिभी प्रमाणभूत अद्वैतसे भिन्न ही माननी चाहिये, अन्यथा प्रमाण भूत अद्वैत अप्रमाणही होजावेगा भ्रांति जब अद्वैतका ही रूप हुई, तब तो पुरुषका रूप हुई, तांते भ्रांति स्वरूप वोला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्व व्यवस्था कुछभी सिद्ध न हुई, यदि भ्रांति भिन्न मानोगे तब तो द्वैतापत्ति होजावेगी, अद्वैत मतकी हानि होजावेगी, यदि स्थंभको कुंभादिकोंसे भेद मानना इसीको भ्रांति कहोगे, तो निश्चय करके सत्स्वरूप कुंभादिक किसी जगह तो जरूर होवेंगे, अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखने में नहीं आवेगी, पहले जिसने सच्चा सर्प नहीं देखा, उसको रज्जू में सर्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं–

श्लोक–नादृष्ट पूर्व सर्पस्य रज्ज्वां सर्पमतिः क्वचित् ।
ततः पूर्वानुसारित्वाद् भ्रांतिरभ्रांति पूर्विका ॥ १ ॥

इसके कहनेसे भी अद्वैत तत्व खंडन होगया, तथा पुरुष अद्वैत रूप तत्व अवश्य करके दूसरेको निवेदन करना अपने आपको नहीं अपनेमें तो व्यामोह है नहीं, यदि कहने वाले में व्यामोह होवे, तो अद्वैत की प्रतिपत्ति कभी भी नहीं होवेगी ॥

पूर्व०–जब आत्माको व्यामोह है, तवही तो अद्वैत तत्वका उपदेश किया जाता है ॥

उ०–जब आत्माका व्यामोह दूर होगा, तव तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरको प्राप्त होगी, जब अवस्था बदलेगी, तो अवश्य द्वैता पत्ति होजावेगी, तथा जब अद्वैत तत्वका उपदेशक पुरुष पर को उपदेश करेगा, तो परको अवश्य मानेगा, फिर अद्वैततत्व पर को निवेदन करना और अद्वैततत्व मानना यह तो ऐसा हुआ, कि

जैसे कोई कहे मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस वचनकेकहनेसे जरूर वह पुरुष उन्मत्त है,यदि अपने को और परको इन दोनों को मानेगा,तव तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसे अद्वैत मानना युक्ति विकल है ॥

पूर्व०-परमब्रह्म रूप सिद्ध ही सकल भेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबनपणेकी सिद्धि है ॥

उ०-यह कथन भी तुम्हारा ठीक नहीं है, क्योंकि परमब्रह्म ही की सिद्धि नहीं है, यदि है तो स्वतः सिद्धि है वा परतः सिद्धि है ? स्वतःसिद्धि तो है नहीं, यदि होवे तो किसीका विवाद न रहे यदि परतः सिद्धि कहोगे, तो क्या अनुमानसे है, वा आगमसे है? यदि अनुमानसे कहोगे तो अनुमान कौनसा है ? कहो ॥

पूर्व०-सो अनुमान यह है, कि विवाद रूप जो अर्थ है, प्रतिभासांत प्रविष्ट ब्रह्म भासके अंतर है, प्रतिभासमान होनेसे,जो २ प्रतिभासमान है,सो २ प्रतिभासांत प्रविष्ट ही देखा है जैसे प्रतिभास आत्मा प्रतिभासमान है, सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवाद रूप है, तिस कारणसे प्रतिभासांत प्रविष्ट है, घट पटादि यह अनुमान है ॥

उ०-यह अनुमान तुम्हारा सम्यक् नहीं (१) धर्मी (२) हेतु (३) दृष्टांत इन तीनोंके प्रतिभासांत प्रविष्ट होनेसे साध्य रूप ही हुए ॥

पूर्व०-तवतो (१) धर्मी (२) हेतु (३) दृष्टांत इन तीनोंके न होनेसे अनुमानही नहीं वन सकता, यदि कहोगे (१) धर्मी (२) हेतु (३) दृष्टांत यह तीनों प्रतिभासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनके साथ हेतु व्यभिचारी होगा, यदि कहोगे अनादि अविद्या वासना

के बलसे हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकी तरह निश्चय करते हैं, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा,सभापति जन की तरह तिस कारणसे अनुमान भी होसकता है,और जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिभासांत प्रविष्ट ही प्रतिभास होगा, विवाद भी न रहेगा, प्रतिपाद्य, प्रति-पादक, साध्य साधन भाव भी न रहेगा, तबतो अनुमान करनेका भी कुछ फल नहीं आपही अनुभव मान परमब्रह्मके होते हुए देश काल अव्यवछिन्न स्वरूपके हुए निर्व्यभिचार, सकल अवस्था व्यापकपणेवाले में अनुमानका कुछ प्रयोग भी नहीं चाहिये है ॥

उ०–यदि अनादि अविद्या प्रतिभासांत प्रविष्ट है,तबतो विद्या ही होगई,तबतो असत्‌रूप (१) धर्मी (२) हेतु (३) दृष्टांत आदिक भेद कैसे दिखा सके ? यदि कहोगे, प्रतिभासके बाहिर भूत है तो (१) अविद्या प्रतिभासमान है ? वा (२) अप्रतिभासमान् है ? तिस अविद्याको प्रतिभासमान रूप होनेसे अप्रतिभासमान तो नहीं है, यदि कहोगे प्रतिभासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है तथा प्रतिभासके बाहिर भूत होनेसे तिसके प्रतिभासमान होने से, यदि आपके मनमें ऐसा होवे कि अविद्या जो है, सो न तो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान है, न प्रतिभासके बाहिर न प्रतिभासके अंदर प्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग्य नहीं, सकल विचारांतर अतिक्रांत स्वरूप है, रूपां-तरके अभावसे अविद्या जो है, सो निरूपता लक्षण है, यह भी आपकी बड़ी अज्ञानताका विस्तार है, तैसी निरूपता स्वभाव की यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है ऐसे कौन कथन करने को

समर्थ है ? यदि कहोगे यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फिर क्योंकर अविद्या निरूप सिद्ध होगी, जो वस्तु जिस स्वरूप करके प्रतिभासमान है, सो उसही वस्तुका रूप है, तथा अविद्या जो है सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है ? यदि विचार गोचर कहोगे, तो निरूप नहीं, यदि विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके माननेवाला महामूर्ख है, जब विद्या अविद्या दोनोंही सिद्ध हैं, तब एक परमब्रह्म अनुमानसे कैसे सिद्ध हुआ ? इस कहने से जो उपनिषद्में एक ब्रह्मके कहने वाली श्रुति है, सो भी खंडन होगई तथा "सर्वं वैखल्विदं ब्रह्मेत्यादि" वचनको परमात्मा के अर्थांतर होनेसे द्वैतापत्ति होजावेगी, जेकर कहोगे अनादि अविद्यासे ऐसा प्रतीत होता है, तबतो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, इसवास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोभावत् है, इस कारणसे अद्वैतमत युक्ति विकल है, इस हेतुसे एकही ईश्वर जगत् से प्रथम था, यह कहना मिथ्या है, यह प्रथम प्रकारके ईश्वरमानने वालोंके मतका खंडन हुआ ॥

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादानकारण वाला एक ईश्वर और दूसरी सामग्री यह दो पदार्थअनादि हैं, इन दोनोंमें से सामग्री जो है सो ऐसे है (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, ४) वायु इन चारोंके परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, यह नव वस्तु नित्य हैं, अनादि हैं, किसीके बनाए हुए नहीं, सो ईश्वर इन पूर्वोक्त कारणोंसे इस सृष्टिको रचता है। अथ मतावलंबीयोंने जिस रीतिसे ईश्वरको जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीति यहां लिखते हैं ॥ उपजाति छंद।

कर्त्तास्तिकश्चिज्जगतः सचैकः, ससर्वगःसस्ववशः सनित्यः ।

इमाः कुहेवाकविडंबनास्यु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥

अस्यार्थः-जगत् जो है, सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्य-मान् है, चराचर रूप तीनों जगत्का कोई जिसका स्वरूप कह नहीं सकता,ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला है। ईश्वरको जगत्का कर्त्ता माननेवाले वादी ऐसे अनुमान करते हैं। किः-पृथिवी,पर्वत वृक्षादि सर्व वुद्धिवालेके बनाये हुए हैं कार्य होनेसे, जो २ कार्य हैं सो२ सर्व वुद्धिवालेके करे हुए हैं। जैसे घट तैसेही यह जगत् है, इसवास्ते जगत् बुद्धिवालेका रचा हुआ है, जो वुद्धिवाला है, सो ही भगवान् ईश्वर है, ऐसा मत कहना क्योंकि यह तुम्हारा हेतु असिद्ध है,किस कारणसे असिद्ध है ? सो कहते हैं कि-पृथिवी पर्वत, वृक्षादिक अपने अपने कारणके समूह करके उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते कार्य रूप हैं, तथा अवयवी हैं, इसलिये कार्य रूप हैं, सर्व वादियोंको निश्चित है, तथा ऐसे भी न कहना जो यह तुम्हारा हेतु अनेकांतिक है, तथा विरुद्ध है, क्योंकि हमारा हेतु विपक्षसे अत्यंत हटा हुआ है, तथा ऐसे भी मत कहना, जो यह तुम्हारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके बांध्या नहीं है, धर्म धर्मी अनंतर कहनेसे, तथा यह भी मत कहना, जो तुम्हारा हेतु प्रकरण सम है, क्योंकि अनुमानसे जो साध्य है, तिसका शत्रुभूत दूसरे साध्यके साधनेवाले अनुमानके अभावसे। तथा ऐसे भी मत कहना जो ईश्वर पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्त्ता नहीं है, विना शरीरके होनेसे मुक्त आत्माकी तरह, यह पिछले तुम्हारे अनुमानका वैरी अनुमान है, सो ईश्वर को जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होने देता, क्योंकि तुमने तो ईश्वर को शरीर रहित सिद्ध करके जगत्का अकर्त्ता सिद्ध किया, परंतु

हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है, इस कारण तुमारा अनुमान असत्य है, और हमारा जो हेतु है सो निरवद्य है। तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्योंकि जो बहुत ईश्वर मानीये तबतो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी २ बुद्धि होजावे, और इनके मने करने वाला तो और कोई है नहीं, तो फेर कार्य कैसे उत्पन्न होवे ? कोई ईश्वर तो अपनी इच्छासे चार पगवाला मनुष्य रचदेवे और दूसरा छै पगवाला रच देवे, तथा तीसरा दो पगवाला रच देवे,और चौथा आठ पग वाला रच देवे इसी तरह सर्व वस्तुको विलक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमंजसरूप होजावे परंतु सो है नहीं,इस हेतु से ईश्वर एक ही होना चाहिये, तथा ईश्वर सर्वज्ञ सर्व व्यापी है, यदि ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तबतो तीन भुवनमें एक साथ जो उत्पन्न होनेवाले कार्य हैं, सो सर्व एककालमें कभी उत्पन्न न होगें, जैसे कुंभारादिक जहां होवेंगे वहां ही कुंभादिक कर सकेंगे, परंतु देशांतरमें कभी कार्य न कर सकेंगे, तथा ईश्वर जो है सर्वज्ञ है यदि सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसे जानेगा ? जब कार्योंके उपादान कारण को न जानेगा, तो जगत् विचित्र कैसे रच सकेगा, तथा स्ववशः ईश्वर जो है सो स्वतंत्र है किसी दूसरेकें आधीन नहीं, ईश्वर अपनी इच्छासे सर्व जीवोंको सुख दुःखका फल देता है ॥ उक्तंच :-

ईश्वर प्रेरितो गच्छेत्, स्वर्गं वा स्व भ्रमेववा।
अन्योजंतु रनीशोय, मात्मनः सुख दुःख योरिति ॥ १ ॥

अस्यार्थः-ईश्वरही की प्रेरणा से जगत् वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्योंकि ईश्वरके बिना और सर्व जीव अपने आपको सुख दुःखका फल देनेको समर्थ नहीं है,यदि ईश्वरकोभी

परतंत्र मानीये, तबतो मुख्य कर्त्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके आधीन माननेसे अनवस्था दूषण भी लग जावेगा, इस हेतुसे ईश्वर अपनेही वश है, परंतु पराधीन नहीं, तथा "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है, यदि अनित्य होवे तब तो उसके उत्पन्न करने वाला कोई और चाहिये, सो तो है, नहीं, इस हेतुसे ईश्वर नित्यही है, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों संयुक्त ईश्वर भगवान् जगत्का कर्त्ता है॥

उ०–हे वादी! जो तुम्हारा यह कहना है पृथिवी, पर्वत वृक्षादिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुए हैं, सो अयुक्त है, क्योंकि इस तुम्हारे अनुमानमें व्याप्तिका ग्रहण नहीं होसक्ता, और हेतु जो होता है सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करके सिद्ध होया हुआही अपने साध्यका गमक होता है इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है॥

अब प्रथम आप यह कहो जब ईश्वर जगत्को रचता है, तो ईश्वर शरीरवाला है? वा शरीर रहित है? यदि कहोगे, ईश्वर शरीरवाला है, तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाई देनेवाला शरीर है, अथवा पिशाच आदिकोंकी तरह अदृश्य (न दिखलाई देनेवाले) शरीरकरी संयुक्त है? यदि प्रथम पक्षमानोगे तबतो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वरके बिनाही अबभी उत्पन्न होते हुए तृण, वृक्ष, इंद्र धनुष, बादल प्रमुख कार्योंके देखनेसे जैसे "अनित्य शब्द प्रमेयत्वात्" जैसे यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसेही यह कार्यत्त्व हेतु साधारण अनेकांतिक है॥

(२) यदि दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाई देता (१) सो ईश्वरके महातम्य करके नहीं दिखलाई देता? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसे नहीं दिखलाई देता है? यदि प्रथम पक्ष

ग्रहण करोगे जो ईश्वरके महात्म्यसे ईश्वरका शरीर नहीं दिखता इस पक्षमें कोईभी प्रमाण नहीं है, जिससे ईश्वरका महात्म्य सिद्ध होवे, और इस तुम्हारे कहने में इतरेतर आश्रय दूषण भी है जब महात्म्य विशेष सिद्ध होजावे तब अदृश्य शरीरवाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीरवाला सिद्ध होवे, तब महात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इति तरेतराश्रय दूषण, यदि दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरह अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, तबतो संशयकी निवृत्ति न होवेगी सो कैसे कि:—क्या ईश्वर है नहीं जिस करके उसका शरीर नहीं दिख पड़ता ? तबतो बांझके पुत्रके शरीरकी तरह, किम्बा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसे ईश्वरका शरीर नहीं दिखता; यह संशय कभी दूर न होवेगा, यदि कहोगे हमाराईश्वर शरीर रहित है, तबतो दृष्टांत और दार्ष्टांतिक यह दोनों विषम होजावेंगे और हेतु विरुद्ध होजावेगा, क्योंकि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभादिक दिख पड़ता है, और ईश्वरको जब शरीर रहित मानोगे तबतो ईश्वर कुछ भी कार्य करनेको समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरह नित्य व्यापक अक्रिय जो है, सो अ-कर्त्ता है इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्धनहीं होती हैं, तथा आपकाहेतु काला-त्ययापदिष्ट भी है, आपके साध्यके धर्मीका एकदेश वृक्ष, बिजली, बादल, इंद्रधनुषादिकोंका अबभी कोई बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दिख पड़ता है, इसवास्ते प्रत्यक्ष करके बाधित होया पीछे तुमने अपना हेतु कहा, इसवास्ते तुम्हारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुम्हारे कार्यत्व हेतुसे बुद्धिमान् ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है॥

तथा दूसरी तरहका जगत् कर्त्ताके खंडन करनेका स्वरूप लिखते हैं। जो कोई ईश्वरवादी यह कहते हैं,कि सर्व जगत् ईश्वर का रचा हुआ है यह उनका कहना समीचीन नहीं है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है॥

पूर्व०-ईश्वरको जगत्का कर्त्ता सिद्ध करने वाला अनुमान प्रमाण है तथाहि जो ठहर २ करके अभिमत फलके सम्पादन करनेके वास्ते प्रवृत्त होवे तिसका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर होना चाहिये जैसे वसोला, आरी प्रमुख शस्त्र, काष्टके दो टुकड़े करनेमें प्रवर्त्तते हैं तैसे ही ठहर२ कर सर्व जगतको सुख दुःखादिक जो फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर चाहिये है। आपने ऐसे न कहना जो वसोला आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करनेमें प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि वह तो अचेतन हैं आपही कैसे प्रवृत्त होसकें? यदि कहोगे वसोला आरी प्रमुख स्वभावसे प्रवृत्त होते हैं, तबतो तिनको सदाही प्रवृत्त होना चाहिये, बीचमें कभी ठहरना न चाहिये परंतु ऐसे है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसे जो ठहर ठहर कर अपने अपने फलके साधने वाले जीव हैं तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध होसक्ताहै, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक,वृत्त,त्र्यंश,चतुरंश,स्थानवाले गाम नगरादिक हैं वो सर्व ज्ञानवान्के करे हुए हैं जैसे घटादिक पदार्थ, तैसे ही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी पर्वत प्रमुख हैं इस अनुमान से भी जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है॥

उ०-जिस अनुमानसे आपने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध कियाहै सो आपका अनुमान अयुक्तहै क्योंकि यह आपकापूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसेआगेहीसिद्धहैवैसाही आपकाकहनासिद्ध करताहै,

इसवास्ते सिद्ध साधनदूषण आपके अनुमानमें होता है जैसे हमारे मतमें आगेही सिद्ध है तैसे लिखते हैं,संपूर्ण इस जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसे है ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि इस भारतवर्षमें, अनेक देशोंमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवंत आदि पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि जो प्राणी वास करते हैं, और उनकोसुख दुःखादिक अनेक तरहकी जो अवस्था वन रही है,तिन सर्व अवस्थाओंका कारण कर्मही जानना, दूसरा कोई नहीं, और देखनेमें भी कर्मही कारण होसक्ताहै, क्योंकि जब कोई पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राज्यमें सुकाल और निरुपद्रव होता है, तो वह उस राजाके शुभकर्मका प्रभाव है, इसकारणसे जो ठहर २ जीवोंको फल देते हैं सो कर्म हैं, कर्म जो हैं सो जीवों के आश्रय हैं और जीव जो हैं सो चेतन होनेसे बुद्धिवाले हैं तबतो बुद्धिवालेके आधीन होकर कर्म ठहर२ कर फल देते हैं इसकारण से सिद्ध साधन दूषण है यदि कहोगे हमतो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते हैं, परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहीं सिद्ध करते ? तबतो आपका दृष्टांत साध्यविकल हुआ, वसोला आरी प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्टितका व्यापार उपलंभ नहीं होता है, किंतु कुंभकारादिकोंका व्यापार तहां २ अन्वय व्यतिरेक करके उपलब्ध होता है ॥

पूर्व०-वर्द्धक्यादिक भी ईश्वरकी प्रेरणाहीसे तिस २ काममें प्रवृत्त होते हैं, इसवास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है ॥

उ०-तबतो ईश्वरभी अन्य ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्तहोवेगा परंतु आप नहीं प्रवृत्त होता सोभी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त होगा तबतो अनवस्था दूषण होगा ॥

पूर्व०–वढई प्रमुख जीवतो सर्व अज्ञानी हैं इसवास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसे अपने२ काममें प्रवृत्त होते हैं,और ईश्वर (भगवान) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इसवास्ते अनवस्था दूषण नहीं है॥

उ०–यह भी आपका कहना असत् है क्योंकि इस तुम्हारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध होजावे, तव अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसा सिद्ध होवे, जव अन्यकी प्रेरणाविना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है, ऐसे सिद्ध होजावे तो ईश्वरसर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जाननेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जव तक दोनोंमें से एक सिद्ध न होवे, तव तक दूसरेकी सिद्ध कभी न होगी,तथा हे ईश्वरवादी ! हम आपको पूछते हैं यदि ईश्वर सर्वज्ञ और वीतराग है तो जीवको असत् व्यवहारमें क्यों प्रवर्ताता है ? क्योंकि जो विवेकी होते हैं, वह मध्यस्थही होते हैं, फिरतो जीवोंको सत्व्यवहारही में प्रवृत्त करना चाहिये परंत असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करनाचाहिये. और ईश्वर तो असत्व्यवहारोंमें भी जीवोंको प्रवृत्त करता है, तवतो ईश्वरको सर्वज्ञ और वीतराग क्योंकर कहना चहिये ?

पूर्व०–ईश्वर (भगवान्) तो सर्व जीवोंको शुभ कर्म करनेमेंही प्रवृत्त करता है, इसवास्ते भगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है,और जो जीव अधर्म करनेवाले हैं उनको असत् व्यवहार में प्रवृत्त करके पीछे नरकपात करके उनको फल देता है, जिससे वह जीव इस दुःखसे डरता हुआ फेर पाप न करे, इसवास्ते उचित फल देने करके ईश्वर (भगवान्) विवेकी और वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोई भी दूषण नहीं है ॥

उ०–यह भी आपका कहना विना विचारका है,क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंभी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर विना दूसरा तो कोई प्रेरक है नहीं,और जीव आप तो कुछ कर नहीं सकता,क्योंकि जीवतो अज्ञानी है, पापमें वा धर्ममें आप प्रवृत्त नहीं होसकता, तो फिर प्रथम पाप करनेको जीवोंको प्रवृत्त करना, पीछे नरकमें डाल के उस जीवको फल भुक्ताना, पीछे धर्ममें प्रवृत्त करना, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, और विचार पूर्वक करणी है ?

पूर्व०–ईश्वर (भगवान्) जीवोंको कभी प्रवृत्त नहीं करता किंतु जीव आपही प्रवृत्त होते हैं, जो जीव जैसा २ कर्म करता है, उस कर्मके वशसे ईश्वर (भगवान्) भी तैसा २ फल उन जीवोंको देता है, जैसे राजा राज करता है, परंतु राजा चोरको ऐसा नहीं कहता जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाई तो करता है, फिर यदि वह चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंडतो राजा देवेगा, तैसे ईश्वर पापतो नहीं कराता, परंतु पाप करनेवालों को दंड देता हैं ॥

उ०–यह भी आपका कहना अयुक्त है क्योंकि दूसरे जो राजे हैं, सो चोरोंको निषेध करनेमें सामर्थ नहीं हैं, क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन) हुक्म वाला राजा होवे,और मन,वच,काय, करके कितना ही चोरी आदिक पाप कर्म मना करना चाहे, परंतु लोग चोरी आदिक पाप कर्म कदापि सर्वथा न छोडेंगे,और ईश्वर (भगवान्)तो सर्व शक्तिमान् आप मानते हो, तो फिर सर्व जीवोंको पाप करनेमें प्रवृत्त होतेको क्यों मना नहीं करता ? जब ईश्वर जीवोंको पाप करनेसे मना नहीं करता, तबतो ईश्वर ही जीवोंसे पाप कराता है, फिर उनको दंड देता है, तो फिर वही पूर्वोक्त दूषण है,यदि कहोगे कि जीवोंको पापमें प्रवृत्त होते को ईश्वर मना करने समर्थ नहीं

तो फिर ऊंचे शब्दसे ऐसे नहीं कहना, कि" सर्व कुछ ईश्वरने ही किया है और ईश्वर सर्व शक्तिमानहे"तथा यदि जीव पापभी आप ही करता है और धर्मभी आपही करता है, तो फलभी आपही भोग लेवेगा, तो फिर ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना करनी व्यर्थ है ॥

पूर्व–धर्म, अधर्म तो जीव आपही करते हैं परंतु उनका फल प्रदान तो ईश्वरही करता है, जीव जो है सो अपने करे हुये धर्म अधर्मका फल आप भोगनेको सामर्थ नह है,जैसे चोर चोरी करता है, सो चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) भोगना आप नहीं भोग सकता, इसवास्ते कोई दूसरा बंदीखानेमें डालनेवाला चाहिये ॥

उ०–यह भी आपका कहना असत् है क्योंकि जब जीव धर्म अधर्म करने सामर्थ है तो फिर फल भोगनेमें सामर्थ क्यों नहीं ? इस संसारमें जैसा २ जो जीव धर्म अधर्म करता है, तैसा २ धर्म अधर्मके फल भोगनेमें निमित्त भी बन जाता है, जैसे चोर चोरी करता है, तिस चोरीका फल राजा देता है तथा कुष्ट होजाता है, तथा शरीरमें कीड़े पड़ जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पानीमें डूब मरता है, तथा खड्गसे कट जाता है,तथा तोप बंदूकके गोलै गोलीसे मर जाता है, तथा हाट हवेली और मिट्टीकी खानके नीचे-दबकर अनेक तरहके संकट भोगकर मर जाता है, निर्धन होजाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तोंसे अपने करे कर्मके फलको भोगता है, यहां विना निमित्तके अन्य ईश्वर फल दाता कोई नहीं दिखता, ऐसेही नरक स्वर्गादि परलोकमें भी शुभ अशुभ कर्मफल भोगनेके असंख्य निमित्त हैं, यदि कहोगे परस्त्री गमन करनेसे इत्यादि पाप फलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके योगसे फल

भोगना होगा? यह बाततो मैं (ग्रंथकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पापका यह निमित्त आपको मिलकर फल होगा, क्योंकि मेरे को इतना ज्ञान नहीं, जो ठीक पूरा २ निमित्त बता सकूं, परंतु इतना तो कह सक्ता हूं कि जो २ जीव पुण्य पाप करते हैं, उनके फल भोगनेमें अवश्य कोइ निमित्त जरूर होगा, और इसतरह से फल भोगेगा यह निमित्त मिलेगा अमुक देशमें अमुक कालमें इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपनेतो अर्हन् भगवान् परमेश्वर सर्वज्ञके ज्ञान में भासन होता है, निमित्त विना कोई भी फल भोग नहीं सक्ता, इसवास्ते ईश्वर फलदाताकी कल्पना व्यर्थ है, क्या यह भी बुद्धि मानोंका कहना है कि जो रोटी पका तो सकता है, परंतु आप नहीं खा सकता, तथा ईश्वरको फलदाता कल्पना करनेसे एक औरभी कलंक आप परमेश्वरको लगाते हो, जैसे किसी पुरुषको किसी दूसरे पुरुषने खड्गादि शस्त्रसे मारा, तब मरने वालेने जो कुछ संकट पाया, सो किसके योगसे? किसकी प्रेरणासे? यदि कहोगे ईश्वरने उस शस्त्रवालेको प्रेरा, तव तिसने उसको मारा, तो फिर उस मारनेवाले को फांसी क्यों मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है? जो प्रथम पुरुषके हाथसे उसको मरवा डालना; और पीछे फिर उस मारनेवालेको फांसी देना!! इस आपकी समझने ईश्वरको बड़ा अन्यायी सिद्ध किया है, यदि कहोगे, ईश्वरकी प्रेरणा के विनाही उस पुरुषने दूसरे पुरुषको मारा, और दुःख दिया, तव तो निमित्तहीसे सुख दुःखका भोगना सिद्ध हुआ; फिर भी ईश्वर फलदाता कल्पना करना यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा हे ईश्वरवादि! आपको एक और वात पूछते हैं, कि उन्मत्त देवांगनाओं के सुकुमार शरीरका स्पर्श करना जो धर्मका फल, सो तो

जीवोंको सुखका कारण है और ईश्वरने उसका फल दिया, परंतु जो अधर्मका फल घोर नरकके कुंडमें पड़ना, नानाप्रकारके दुःख (संकट) त्रास, कुंभीपाक, चर्म उत्कर्त्तन, अग्निमें जलना, इत्यादि महादुःख ईश्वर उन जीवोंको क्यों देता है ?

पूर्व०-उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीव को जरूर होना चाहिये, इसवास्ते ईश्वर फल देता है॥

उ०-इस आपके कहनेसे तो ईश्वर व्यर्थही जीवोंको पीड़ादेता है, क्योंकि जव ईश्वर उन जीवोंको पापका फल न देगा तवतो कर्मका फल जीव आपतो भोगसकते नहीं,फिरतो न शरीर धारेगा और नवीन पापभी न करेगा, तो फिर वैठे वठाये ईश्वरको क्या गुदगुदी उठती है, जो फिर उन जीवोंको नरकमें डाल देता है ? जो मध्यस्थ भाववाला और परमदयालु होता है; वह किसी जीव को कभी निरर्थक पीड़ा नहीं देता॥

पूर्व०-ईश्वर (भगवान्) अपनी क्रीड़ाके वास्ते किसीको नरक में डालता है, किसीको तिर्यंच योनिमें उत्पन्न करता है, किसीको मनुष्य जन्ममें, और किसीको स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वह जीव नाचते, कूदते, रोते,पीटते,विलाप करते हैं,तब ईश्वर अपनी रची हुई बाजीका तमाशा देखता है, इसवास्ते जगत् रचता है॥

उ०-जब ऐसे है,तबतो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है;क्योंकि उस की तो क्रीड़ा होती है, और रंक जीव तडफ तडफके महाकरुणास्पद होकर मर रहे हैं, तो फिर ईश्वरको दयालु मानना यह कैसी आपकी अज्ञानता है ? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं, वह कदापि किसी जीवको दुःख देकर क्रीड़ा नहीं करते, तो फिर ईश्वर क्रीड़ार्थी कैसे होसक्ता है? तथा क्रीड़ाजो है,सो सरागी

को होती है, और ईश्वर (भगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (भगवान्) को क्रीड़ा रसमें मग्न होना कैसे संभवे ?

पूर्व०-हमारा जो ईश्वर है,सो रागी द्वेषी है, इसकारणसे उस में क्रीड़ा करनेका संभव होसक्ता है ॥

उ०-जब ईश्वर रागी द्वेषी हुआ, तो शेष जीवोंकी तरह् सरागी हुआ, वीतराग न हुआ, और सर्वज्ञ भी न हुआ, तब तो हमारे सरीखा हुआ,फेर जगत्का रचनेवाला क्योंकर होसक्ता है?

पूर्व०-हमतो ईश्वरको रागद्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते हैं, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है ॥

उ०-इस आपके कहनेमें कोई भी प्रमाण नहीं है, कि जिस प्रमाणसे ईश्वर रागद्वेष संयुक्त सर्वज्ञ सिद्ध होवे ॥

पूर्व०-ईश्वरका स्वभावही ऐसा है, जो रागी द्वेषी भी होना, और सर्वज्ञ भी रहना, स्वभावमें कोई तर्क नहीं होसक्ती । जैसे अग्नि तो दाहक है, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा, जो अग्निमें दाहक स्वभाव है,आकाशमें नहीं,इसीतरह ईश्वर भी स्वभावसेही रागीद्वेषी और सर्वज्ञ है ॥

उ०-ऐसे तो कोई वादी भी नहीं कह सक्ताहै,कि जो यह हमारे सन्मुख गधा खड़ा है, सो सर्व जगतका रचनेवाला है । यदि कोई वादी पूछे कि किस हेतुसे यह गर्दभ जगत्का रचनेवाला है, तब तो उसको ऐसा उत्तर दिया जायगा, जो इस गर्दभका स्वभावही ऐसा है, जो जगत्को रचके रागद्वेषवाला सर्वज्ञ होकर फेर गर्दभ बन जाना है । इसीतरह महीष आदिक सर्व जीवोंको वादी जगत् का कर्त्तासिद्धकर देवेंगे । तब तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें आया सो बनालिया । यह तो ईश्वरको वड़ा कलंक लगाना

है। इस हेतुसे जव ईश्वर सर्वज्ञ और वीतराग हुआ तो फिर क्रीड़ाके लिये जगत् क्यों रचेगा। तथा हे ईश्वरवादिन्! तेरे कहनेसे जव ईश्वरने ही सर्व कुछ रचा है, तवतो सर्व मतके सर्व शास्त्रभी ईश्वरहीने रचे हैं, और सर्व शास्त्र आपसमें विरुद्ध हैं। और अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य और कितनेक असत्य हैं, तव झूठ और सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वरही ठहरा, तवतो ईश्वर आपही सर्व मतांतरीयोंको आपसमें लडाता है, हजारों लाखों मनुष्य इन मतोंके झगड़ोंमें मर जाते हैं, तवतो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे एक जगत्में बड़ा उपद्रव रचा! ऐसे झूठे सच्चे शास्त्र रचने वाले को महाधूर्त्त कहना चाहिये, किंतु ईश्वर कहना न चाहिये। यदि कहोगे, ईश्वरने तो सच्चे शास्त्रही रचे हैं, झूठे नहीं रचे। झूठेतो जीवने आपहीवना लीयेहैं, तवतो ईश्वरने जगत् भी नहीं रचा होगा जगत्भी जीवोंने ही रचा होगा, क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नहीं॥

तथा आपने जो पूर्व दूसरा अनुमान किया था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सर्व वुद्धिवालेकी रची हुई है। जैसे पुराना कूवा देखेंगे, यद्यपि कारीगर तहां नहीं भी उपलब्ध होता तोभी कारीगर ही कर्त्ता अनुमानसे सिद्ध होगा, जैसे नये कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है।

उ०—यह पूर्वोक्त आपका कहना समीचीन नहीं है; क्योंकि आकार वाला हेतु, आपका संध्या, वादल, सर्पकी वंबी प्रमुख संस्थानवालोंमें है, परंतु वुद्धिवाला कर्त्ता कोई नहीं है। यदि कहोगे, वादल, इंद्रधनुष, सर्पकी वंवी प्रमुख संस्थानवाले वुद्धिमान् के करे हुये नहीं माने जाते हैं, तवतो तैसेही पृथिवी, पर्वत भी वुद्धिमान्के करे हुये नहीं मानने चाहियें॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे किसी तरह भी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, अब जो पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता मानते हैं, उनसे हम यह कहते हैं, कि जबतक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे, तबतक ईश्वरको जगत्का कर्त्ता न मानना चाहिये। जब कोई ईश्वरवादी इन युक्तियोंका उत्तर पूरा दे देवेगा तब तो हम भी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेंगे, अन्यथा कभी नहीं माना जावेगा॥

पूर्व-ईश्वरतो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है, ऐसा तो सिद्ध होता है, कि नहीं ?

उ०-ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तबतो ईश्वर एक कैसे सिद्ध होवे ?

पूर्व०-ईश्वरके एकत्व सिद्ध होनेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुतसे इकट्ठे होकर एक कामको करने लगते हैं, तबतो अन्य २ मति होनसे एक कार्य भी नहीं बन सक्ता। ऐसे ही जब ईश्वर अनंत होंगे, तबतो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यके करनेमें भिन्न २ मति होनेसे असमंजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इसवास्ते ईश्वर एक ही होना चाहिये॥

उ०-इस आपके प्रमाणसे तो ईश्वर एक नहीं सिद्ध होता है, क्योंकि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता है। तथा एक मधु छत्ते के बनानेमें सर्व मक्षीयों का एक मता तो होजाता है, और ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक ज्योतिः स्वरूपोंका एकमता नहीं होसक्ता, यह बडे आश्चर्य की बात है, क्या आपने ईश्वरको कीड़ोंसे भी बुद्धि हीन, अभिमानी और अज्ञानी बना दिया, जो उन सर्वका एकमता नहीं होसक्ता ?

पूर्व०-मक्खीयें जो बहुत इकट्ठी होकर एक मधुछत्तादि बनाती हैं, तहां भी एक ईश्वरहीके व्यापारसे एक मधुछत्ता बनता है ?

उ०-तबतो घड़ा बनाना; चोरी करना, परस्त्री गमन करना, इत्यादिक सर्व काम ईश्वरके व्यापारसे बने सिद्ध होंगे, और सर्व जीव अकर्त्ता सिद्ध होजावेंगे, फिर पुण्य पापका फल किसको होगा ? और नरक स्वर्गमें जीव क्यों भेजे जावेंगे ॥

पूर्व०-जीव, कुंभार,चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासे अपना २ कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है ॥

उ०-क्या मक्खियों ही ने आपका कुछ अपराध किया है, जो उनको स्वतंत्र नहीं कहते हो ? इस आपके एक ईश्वरके माननेसे तो ऐसाभी प्रतीत होता है, कि यदि अनंत ईश्वरमाने जावें, तब जो क़दाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद होजावे, तो फिर उस विवाद को दूर कौन करे ? शिर पंचतो कोई है नहीं। तथा एक ईश्वर को देखके दूसरा ईश्वर ईर्षा करेगा, कि यह मेरे तुल्य क्यों है ? इत्यादिक अनेक उपद्रव होजाने, के भय से एकही ईश्वर मानते होंगे, यह भी आपकी समझ अज्ञानरूपी घुणकी खाई हुई है, क्योंकि जब ईश्वर (भगवान्) सर्वज्ञ है, तवतो सर्वज्ञके ज्ञानमें एकही सरीषा भान होनाचाहिये,तो फिर विवाद क्योंकर होगा ? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्षा, अभिमानादि सर्व दूषणोंसे रहित है, तो दूसरे ईश्वरको देखकर ईर्षा अभिमान क्यों करेगा ? यदि ईश्वर होकर भी आपसमें विवाद, झगड़ा, ईर्षा, अभिमान करेंगे, तो तिन पामरोंको ईश्वरही कैसे माना जावेगा ? जब जगत् कर्त्ता ही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तो विवाद, झगडाही ईश्वरोंका आपस में क्यों होगा ? इसवास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुछ भी दूषण

नहीं। तथा "सर्वगतत्वं" ईश्वर सर्व व्यापक है,यह भी जो मानते हैं सोभी प्रमाणिक नहीं है,क्योंकि जब ईश्वरको सर्व व्यापक मानते हैं, तब शरीर करके व्यापक मानते हैं? वा ज्ञानस्वरूप करके व्यापक मानते हैं? यदि शरीर करके ईश्वरको सर्व व्यापक मानेंगे, तबतो ईश्वरका शरीर ही सर्वत्र समाजायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोई भी अवकाश न मिलेगा, इसवास्ते ईश्वर देह करके तो सर्वत्र व्यापक नहीं है॥

पूर्व–क्या ईश्वरके भी शरीर है,जो आप ऐसे विकल्प करते हैं?

उ०–हे भव्य! ऐसे भी इस जगत्में मत हैं, जो ईश्वरको देह धारी मानते हैं॥

पूर्व०–वह कौनसे मत हैं, जिन्होंने देहधारी ईश्वर माना है?

उ०–हम (जैनी) तो जीवन मुक्त देहधारी को ईश्वर मानते हैं, तथा तौरेत नामा ग्रंथ है, तिसमें ऐसा लिखा है, कि ईश्वरने इब्राहीमके वहां रोटीखाई, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसे प्रतीत होता है, कि ईश्वर देहधारी है, तथा शंकर दिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य आनंदगिरि जो इसी ग्रंथकी आदिमें लिखता है, कि मैं सर्वज्ञ हूं। सो आनंदगिरि लिखता है, कि जब नारदजीने देखा कि इस लोकमें बहुत कपोल कल्पित मत उत्पन्न होगये हैं, और सनातनधर्म लुप्त होगया है, तब नारदजी शीघ्रही ब्रह्माजीके पास पहुंचे, और जाकर कहने लगे कि, हे पिताजी! आपका मततो प्रायः नहीं रहा, और लोकोंने अनेकमत बनालीये हैं,सो इस बातका कुछ उपाय करना चाहिये तो ब्रह्माजी बहुत काल तांई चिंताकरके पुत्र, मित्र, भक्तजनों को साथ लेकर अपने लोकसे चलकर शिव लोकमें प्रवेश करते हुए।

आगे क्या देखते हैं कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्योंका तेज, तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हैं, चंद्रमा मुकुट है, विद्युत्वत् पिंगल जटाका धारक, और पार्वती जिसके वामार्द्ध अंगमें है, ऐसा सर्वका ईश्वर महादेव देखा, फिर ब्रह्माजी ने नमस्कार करके स्तुति करी, और कहते हुये, कि भो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षिन्, सर्वमय, सर्व कारण, इत्यादि लिखने से प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है। यदि देहधारी ईश्वर न होवे, तो पांच मुख कैसे होवें? इस लिखनसे ईश्वर शरीर रहित सिद्ध नहीं होसक्ता है। यदि शरीरधारी ईश्वर होवे, तबतो इस लोकमें अकेला ईश्वरही व्यापक होकर रहेगा, तबतो दूसरे पदार्थों के रहने वास्ते कोई दूसरा लोक चाहिये। यदि कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तबतो सिद्धसाध्य ही है, हमभी तो ज्ञानस्वरूप करके भगवान्को सर्व व्यापी मानते हैं. परंतु यदि आपके वेदसे न विरोध होवे ? क्योंकि वेदोंमें शरीर करके ही सर्व व्यापक कहा है। तथाचः—"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतःमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्यादित्यादि श्रुतेः" इस श्रुतिसे सिद्ध है, कि ईश्वर शरीर करके सर्व व्यापक है, फिरतो पूर्वोक्त दूषण है, इसवास्ते ईश्वर सर्व व्यापक नहीं। तथा आप कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु आपका ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं। क्योंकि हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ता के खंडन करनेवाले हैं, सो उससे विपरीत चलते हैं, फिर हमको उसने क्यों रचा? यदि कहोगे, जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो हमारे शुभाशुभ कर्म हैं तिन्होंके अनुसार हमको ईश्वर फल देता है, तो फिर आपके कहनेही से ईश्वरके स्वतंत्र पनेको जलांजलि दी गई क्योंकि जब हमारे कर्मोंके विना ईश्वर फल नहीं देसक्ता, तबतो

ईश्वरके कुछभी अधीन नहीं, जैसे हमारे कर्म होंगे, तैसा हमको फल मिलेगा। यदि कहोगे ईश्वर जो इच्छे, सो करे, तवतो कौन जानता है, कि ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंको नरकमें, पापीयोंको स्वर्गमें भेजेगा ? यदि कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करता है, उसको वैसा वैसा फल देता है,तो फिरभी वही परतंत्रता रूप दूषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह भी कहना उनका अपने घरहीमें सुंदर लगता है, क्योंकि नित्य तो उस वस्तु को कहते हैं, जो तीनोंकालमें एक रूप रहे, जव ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को वनानेवाला स्वभाव है, वा नहीं ? यदि कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव है, तवतो ईश्वर निरंतर जगत्को रचाही करेगा, कदापि रचनेसे बंध नहीं होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वभाव तो ईश्वरमें नित्य है। यदि कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव नहीं है तवतो ईश्वर कदापि जगत्को न रचेगा क्योंकि जगत् रचनेका स्वभाव ईश्वरमें है ही नहीं। तथा यदि ईश्वरमें एकांतनित्य जगत् रचनेका स्वभाव है,तवतो प्रलय कदापि न होगी, क्योंकि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वभाव नहीं है। यदि कहोगे ईश्वरमें रचनेकी और प्रलय करनेकी दोनोंही शक्तियां नित्य हैं, तवतो न कदापि जगत् रचा जायगा, और न कभी प्रलय होगी। क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगह एक कालमें कदापि नहीं रहेंगी। यदि रहेंगी, तवतो जगत् न रचा जावेगा, न प्रलय किया जावेगा, क्योंकि जिस कालमें रचनेवाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, और जिस कालमें प्रलय शक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचनेवाली शक्ति रच देवेगी, ऐसे जब शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तव

तो न जगत् रचा जायगा, न प्रलय किया जायगा, तबतो हमारा ही मत सिद्ध हुआ; क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, और न इस जगत्की कभी प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि अनंत सिद्ध हुआ, यदि कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहीं है, फिर भी तो न जगत् रचा, न प्रलय ही किया, तबतो अनादि अनंत सिद्ध हुआ। यदि कहोगे ईश्वर जब रचना चाहता है, तब रचनेकी इच्छा कर लेता है, और जब प्रलय करना चाहता है, तब प्रलयकी इच्छाकरलेता है, इसमें क्या दूषण है? तबतो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेंगी सो सुखेन अनित्य होवें; इसमें हमारी क्या हानि है? यदि ईश्वर की शक्तियां अनित्य हैं, तबतो ईश्वरभी अनित्य होजावेगा, क्योंकि ईश्वर अपनी शक्तियोंसे अभेद है। यदि कहोगे शक्तियां ईश्वरसे भेद रूप हैं, तब भी शक्तियोंके नित्य होनेसे जगत् न रचा जायगा और न प्रलय किया जायगा, और ईश्वर अकिंचित् कर सिद्ध हो जावेगा, क्योंकि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसे रहित है, तबतो ईश्वर कुछ भी करने समर्थ नहीं है, फिर जगत् रचनेमें क्योंकर समर्थ होवेगा? और शक्तियोंका उपादान कारण कौन होवेगा? और ईश्वरका अभाव होजावेगा। क्योंकि जब ईश्वरमें शक्ति ही कोई नहीं, तब तो ईश्वर क्या? वह तो आकाशके फूल समान असत् है; फिर जगत्का कर्त्ता किसको मानोगे?

पूर्व०-यदि सर्वज्ञ वीतराग ईश्वर जगत्का कर्त्ता नहीं है, तो यह जगत् अपने आप कैसे उत्पन्न हुआ? क्योंकि हम देखते हैं कर्त्ताके विना कुछभीउत्पन्न नहीं होता है। जैसे घडीयाल आदि वस्तु।

उ०-हे परीक्षक! आपको हमारा अभिप्राय यथार्थ मालूम पडता नहीं है, इसवास्ते आप कर्त्ता ईश्वर कहते हो, इस जगत्में

जो बनाई हुई वस्तु हैं, उनका कर्त्ता तो हम भी मानते हैं, जैसे घट, पट, मठ, घडीयाल, मकान, हाट, हवेली, संकल, जंजीरादि परंतु आकाश, काल, स्वभाव, परमाणु, जीव इत्यादि वस्तु किसी की रची हुई नहीं हैं, क्योंकि सर्व विद्वानोंका मत है, कि जो वस्तु कार्य रूप उत्पन्न होती है, तिसका उपादान कारण अवश्य होना चाहिये। विना उपादानके कदापि कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है, जो कोई विना उपादान कारणके वस्तुकी उत्पत्ति मानता है, सो मूर्ख प्रमाणका स्वरूप नहीं जानता है; तिसका कथन कोई महामूढ मानेगा, इसवास्ते आकाश (१) आत्मा (२) काल (३) परमाणु (४) इनका उपादानकारण कोई नहीं है, इसवास्ते यह चारों वस्तु अनादि हैं, इनका कोई रचनेवाला नहीं है, इससे जो यह कहना है, कि सर्व वस्तु ईश्वर ने रची हैं, सो मिथ्या है। अब शेष वस्तु पृथिवी (१) जल (२) अग्नि (३) पवन (४) वनस्पति (५) चलने फिरनेवाले जीव रहे हैं, तथा पृथिवीका भेद नरक, स्वर्ग, सूर्य, चंद्र ग्रह, नक्षत्र, तारादि हैं, यह सर्व जड चैतन्यके उपादानसे बने हैं, जो जीव और जड परमाणुओंके संयोगसे वस्तु बनी है, वे, पृथिवी ऊपर आदि लिख आये है, यह पृथिवी आदि वस्तु प्रवाहसे अनादि नित्य हैं, और पर्याय रूप करके अनित्य हैं। और यह जड चैतन्य अनंत स्वभाविक शक्तिवाले हैं। वे अनंत शक्तियां अपने अपने कालादि निमित्तोंके मिलनेसे प्रगट होती हैं, और इस जगत् में जो रचना पीछे हुई है, और जो होरही है, और जो होवेगी, सो सर्व पांच निमित्त उपादानकारणोंसे होती हैं, वे कारण यह हैं। काल (१) स्वभाव (२) नियति (३) कर्म (४) उद्यम (५) इन पांचोंके सिवाय अन्य कोई इस जगत्का कर्त्ता और नियंता ईश्वर

किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है; तिसकी सिद्धिका खंडन पहले सब लिख आये हैं, जैसे एक बीजमें अनंतशक्तियां हैं, वृक्षमें जितने रंग विरंगे मूल (१) कंद (२) स्कंध (३) त्वचा (४) शाखा (५) प्रवाल (६) पत्र (७) पुष्प (८) फल (९) बीज (१०) प्रमुख विचित्र रचना मालूम होती है, सो सर्व बीजमें शक्ति रूपसे रहती हैं, जब कोई बीजको जलाके भस्म करे तब तिस बीजके परमाणुओं में पूर्वोक्त सर्व शक्ति रहती हैं, परंतु विना निमित्तके एकभी शक्ति प्रगट नहीं होती है, यदि बीजमें शक्तियां न मानें, तो गेहूंके बीज से आंब, बंबूल, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि भी उत्पन्न होने चाहियें। इसवास्ते सर्व वस्तुओंमें अपनी अपनी अनंत शक्तियां हैं जैसा जैसा निमित्त मिलता है, तैसीतैसी शक्ति वस्तुमें प्रगट होती है। जैसे बीज कोठीमें पडा है, तिसमें वृक्षके सर्व अवयवोंके होने की शक्तियां हैं, परंतु काल विना बीजसे अंकुर नहीं निकल सक्ता है, काल तो वृष्टि ऋतुका है, परंतु भूमि और जलके संयोग विना अंकुर नहीं होसक्ता है, काल भूमि और जल तो मिले है, परंतु विना स्वभावके कंकर बोवें तो अंकुर नहीं होता है। बीजका स्वभाव (१) काल (२) भूमि (३) जल (४) आदि तो मिले है, परंतु बीजमें जो तथा तथा भवन अर्थात् होनेवाली अनादि नियतिके विना बीज तैसालंबा चौडा अंकुर निर्विघ्नतासे नहीं देसक्ता है,जो निर्विघ्नपणे तथा तथा रूप कार्यको निष्पन्नकरे सो नियति और यदि बनस्पतिके जीवोंने पूर्व जन्ममें ऐसे कर्म न करे होते,तो बनस्पतिमें उत्पन्न न होते। यदि बोनेवाला न होवे, तथा बीज स्वयं अपने भारी पणे करके पृथिवीमें न पडे तो, कदापि अंकुर उत्पन्न न होवे,इसवास्ते बीजांकुरकी उत्पत्तिमें पांच कारण हैं। काल (१)

स्वभाव (२) नियति (३) पूर्व कर्म (४) और उद्यम (५) इन पांचों के सिवाय अन्य कोई अंकुर उत्पन्न करनेवाला ईश्वर नहीं सिद्ध होता है, तथा मनुष्य गर्भमें उत्पन्न होता है, तहां भी पांच कारणसे ही होता है। गर्भ धारणेके कालमें ही गर्भ रहे १, गर्भकी जगाका स्वभाव गर्भ धारणका होवे,तोही गर्भ धारण करे २,गर्भका तथा तथा निर्विघ्नपणेसे होना नियतिसे है ३, जीवोंने पूर्व जन्ममें मनुष्य होनेके कर्म करे हों,तोही मनुष्यपणे उत्पन्न होते हैं ४,माता पिता और कर्मसे आकर्षण न होवे, तो कदापि गर्भ उत्पन्न न होवे ५, इसी तरह जो वस्तु जगत्में उत्पन्न होती है, सो इन ही पांचों निमित्तकारणोंसे और उपादानकारणोंसे होती है। और पृथिवी प्रवाहसे सदा रहेगी, और पर्याय रूप करके तो सदा नाश और उत्पन्न होती है; क्योंकि सदा असंख्य जीव पृथिवीपने ही उत्पन्न होते हैं, और मरते हैं, तिन जीवोंके शरीरोंका पिंड ही पृथिवी है। जो कोई प्रमाणवेत्ता ऐसा समझता है,कि कार्यरूप होने से पृथिवी एक दिन तो अवश्य सर्वथा नाश होजावेगी घटवत्। परंतु यह समझ ठीक नहीं है;क्योंकि जैसा कार्य घट है, तैसा कार्य पृथिवी नहीं है, क्योंकि घटमें घटपणे उत्पन्न होने वाले नवीन परमाणु नहीं आतेहैं,और पृथिवीमें तो सदा पृथिवी शरीरवाले जीव असंख्य उत्पन्न होते हैं, और पूर्वले नाश होते हैं, उन असंख्य जीवोंके शरीर मिलने और विछडनेसे पृथिवी वैसी ही रहेगी। जैसे नदीका पानी अगला अगला चला जाता है, और नवीन नवीन आनेसे नदी वैसीही रहती है, इसलिये घट रूप कार्य समान पृथिवी नहीं है, इसवास्ते पृथिवी सदाही रहेगी,और तिसके ऊपर जो रचना है, सोभी पूर्वोक्त पांच कारणोंसे सदा होती रहेगी, इसवास्ते पृथिवी

अनादि अनंत काल तक रहेगी, इसवास्ते पृथिवीका कर्त्ता ईश्वर नहीं है ॥ और जो कितनेक भोले जीव मनुष्य, पशु, पृथिवी, पवन, वनस्पति, तथा चंद्र सूर्यको देखके और मनुष्य पशुओं के शरीरकी हड्डीयोंकी रचना, आंखके पड़दे, खोपरीके टुकडे, नशा जालादि शरीरकी विचित्र रचना देखके हैरान होते हैं, जब कुछ आगा पीछा नहीं सूझता है, तब हार कर यह कह देते हैं, कि यह रचना ईश्वरके विना कौन कर सक्ता है, इसवास्ते ईश्वर कर्त्ता कर्त्ता पुकारते हैं, परंतु जगत् कर्त्ता माननेसे ईश्वरका सत्यानाश कर देते हैं, सो नहीं देखते हैं । हे भोले जीव ! यदि तैंने अष्ट कर्मके १४८ एक सौ अडतालीस भेद जाने होते तो अपने विचारे ईश्वरको क्यों जगत् कर्त्ता रूप कलंक देके तिसके ईश्वरत्व की हानि करता ? क्योंकि जो जो कल्पना भोले लोकोंने ईश्वरमें की हैं, सो सो सर्व कर्म द्वारा सिद्ध होती हैं, तिन कर्मोंका स्वरूप संक्षेपमात्र यहां लिखते हैं। प्रथम जैनमतमें कर्म किसको कहते हैं, तिस का स्वरूप लिखते हैं ॥

जैसे तैलादिसे शरीर चोपडके कोई पुरुष नगरमें फिरे, तब तिसके शरीर ऊपर सूक्ष्म रज उडकर तैलादिके संयोगसे चिपक जाती है, तैसेही जीवोंके जीवहिंसा (१) झूठ (२) चौरी (३) मैथुन (४) परिग्रह (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ (९) राग (१०) द्वेष (११) कलह (१२) अभ्याख्यान (१३) पैशुन (१४) परपरिवाद (१५) रति अरति (१६) मायामृषावाद (१७) मिथ्यादर्शनशल्य (१८) रूप जो अंतःकरणके परिणाम हैं, वे तैलादि चिकास समान हैं । तिनमें जो पुद्गल जड़ रूप मिलता है, तिसको वासनारूप सूक्ष्म कार्माण शरीर कहते हैं । यह शरीर जीवके साथ प्रवाहसे अनादि

संयोगसंबंधवाला है; इस शरीरमें असंख्य तरहकी पाप पुण्य रूप कर्म प्रकृतियें समा रही हैं। इस शरीरको जैनमतमें कर्म कहते हैं और सांख्यमतवाले प्रकृति, वेदांती माया, और नैयायिक वैशेषिक अदृष्ट कहते हैं। कोईक मतवाले क्रियमाण संचित प्रारब्ध रूप भेद कहते हैं, बौद्धलोक वासना कहते हैं, विना समझके लोक इन कर्मोंको ईश्वरकी लीला वा कुदरत कहते हैं, परंतु किसी भी मत वाला इन कर्मोंका यथार्थ स्वरूप नहीं जानता है। क्योंकि इन्हों के मतमें कोई सर्वज्ञ नहीं हुआ है, जो यथार्थ कर्मोंका स्वरूप कथन करे। इसवास्ते लोक भ्रम अज्ञानके वश होकर अनेक मनमानी जगत् कर्त्तादिककी कल्पना करके अंधाधुंध पंथ चलाये जाते हैं॥

ज्ञानावरणीय (१) दर्शनावरणीय (२) वेदनीय (३) मोहनीय (४) आयुः (५) नाम (६) गोत्र (७) अंतराय (८) यह आठ कर्म हैं। ज्ञानावरणीयके ५ भेद, दर्शनावरणीयके ९ भेद, वेदनीयके २ भेद, मोहनीयके २८ भेद, आयुः के ४ भेद, नामकर्मके ९३ भेद, गोत्रकर्मके २ भेद, अंतरायकर्म के ५ भेद, कुल १४८ भेद हैं ग्रंथ गौरवताके भयसे हम इन १४८ प्रकृतियोंका स्वरूप भिन्न २ नहीं लिखते हैं। जिसको देखना होवे वह हमारी बनाई ईसाईमत समीक्षा और जैनप्रश्नोत्तरावलि देख लेवे। और यदि कर्मोंके भेदों का सविस्तर वर्णन देखना होवे तो कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति शतकादि शास्त्रोंमें देख लेवे॥

इन आठ कर्मकी एक सौ अडतालीस १४८ कर्म प्रकृतिके उदयसे जीवोंके शरीरादिककी विचित्र रचना होती है, जैसे आहार के खानेसे शरीरमें जैसे जैसे रंग और प्रमाण संयुक्त हाड नशा-जाल, आंखके पडदे, मस्तकके विचित्र अवयव पणे आहारका

रस परिणमता है, यह सर्व कर्मोंके उदयसे शरीरके सामर्थ्यसे होता है, जैसे यहां ईश्वर कुछ भी नहीं करता है तैसे ही काल १ स्वभाव २ नियति ३ कर्म ४ उद्यम ५ इन पांचोंकारणोंसे जगत् की विचित्र रचना हो रहीहै, यदि ईश्वरवादी लोक इन पूर्वोक्त पांचों के समवायका नाम ईश्वर कहते होवें, तब तो हमभी ऐसे ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं। इसके सिवाय और कोई कर्त्ता नहीं है। यदि कोई कहे जैनियोंने स्वकपोलकल्पनासे कर्मोंके भेद बना रक्खे हैं सो यह कहना मिथ्या है, क्योंकि कार्यानुमानसे जो जैनीयोंने कर्मोंके भेद माने हैं, वे सर्व सिद्ध होते हैं, और पूर्वोक्त सर्व कर्मके भेद सर्वज्ञ वीतरागने प्रत्यक्ष केवलज्ञानसे देखे हैं। इन कर्मोंके सिवाय जगत्की विचित्र रचना कदापि सिद्ध नहीं होवेगी, इसवास्ते सुज्ञ लोकोंको अरिहंत प्रणीतमत अंगीकार करना उचित है, और ईश्वर वीतराग सर्वज्ञ किसी प्रमाणसे भी जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है, जिसका स्वरूप थोडासा ऊपर लिख आये हैं। जिसको ईश्वर कर्त्ताके खंडनका विस्तारसहित वर्णन देखना होवे, तो वह सम्मति तर्क, द्वादशसार नयचक्र, स्याद्वादरत्नाकर, अनेकांत जयपताका, शास्त्रसमुच्चय, स्याद्वाद कल्पलता, स्याद्वादमंजरी, स्याद्वादरत्नाक॰ रावतारिका, सूत्रकृतांग, नंदिसूत्र, शब्दांभोनिधिगंधस्तीमहाभाष्य, प्रमाणसमुच्चय, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणमीमांसा, आप्तमीमांसा, प्रमेयकमलमार्त्तंड, प्रमेयघनमार्त्तंड, न्यायावतार, धर्मसंग्रहणी, तत्वार्थ, षट्दर्शनसमुच्चयादि शास्त्रोंमें देख लेवे॥

प्रश्न–प्राचीन शास्त्रोंमें ईश्वरका कैसा स्वरूप कथन किया है?

उत्तर–जैनमतके शास्त्रोंमें तो अरिहंत पद, और सिद्ध पद, इन दोनों पदोंको ईश्वर माना है, और तिनका स्वरूप ऐसे लिखा

है। बहुत जन्मोंसे जो कोई जीव पूर्व होगये, अरिहंतके कथनानुसार अच्छीतरह सत्यधर्म नीतिका अभ्यास करता हुआ जब अरिहंत होनेके भवसे पहिले तीसरे जन्ममें उत्कृष्ट बीस भावनाका अभ्यास अच्छीतरहसे कर्त्ता है, तब तीर्थंकर नामकर्मका बंधकर्त्ता है अर्थात् अरिहंत तीर्थंकर पद प्राप्त करनेवाला पुण्य उपार्जन करता है। तब वहांसे कालकरके प्रायः स्वर्ग (देवलोकमें) उत्पन्न होताहै, वहांसे काल करके मनुष्य क्षेत्रमें बहुतभारी ऋद्धि परिवारवाले उत्तम शुद्ध राज्यकुलमें उत्पन्न होते हैं, यदि पूर्व जन्ममें निकाचित पुण्यसे भोग्यकर्म उपार्जन किया होवे, तबतो तिस भोग्यकर्मानुसार राज्यभोग विलास मनोहर भोगते हैं। और भोग्यकर्म उपार्जन नहीं किया होवे, तो राज्यभोग नहीं करते हैं। इन तीर्थंकर होनेवाले जीवोंको माताके गर्भमें ही तीन ज्ञान अर्थात् मति, श्रुति, अवधि, यह तीन ज्ञान अवश्यमेव होते हैं। दीक्षाका समय तीर्थंकरके जीव अपने ज्ञानसेही जान लेते हैं। यदि माता पिता विद्यमान होवें, तबतो तिनकी आज्ञा लेके, यदि माता पिता विद्यमान न होवें, तो अपने भाई आदि कुटुंबकी आज्ञालेके दीक्षा लेते हैं। दीक्षा लेनेसे एक वर्ष पहले लोकांतिक देवते आकर कहते हैं, हे भगवन्! धर्म तीर्थ प्रवर्त्तावो। तद पीछे एक वर्ष पर्यंत तीन सौ कोटि अठचासीकरोड अस्सीलाख ३८८८००००००इतनी सोनेकी मोहरें दान देके बडे महोत्सवसे दीक्षा स्वयमेव लेते हैं, परं किसीको गुरु नहीं करते हैं, क्योंकि वे तो आपही त्रिलोक्यके गुरु होनेवाले होते हैं, और ज्ञानवान् होते हैं, पीछे सर्व पापके त्यागी होकर महा अद्भुत तप करते हैं। चार घाती कर्म क्षय करके केवली होते हैं। पीछे संसार तारक उपदेश देकर धर्म तीर्थ प्रवर्त्ताते हैं। ऐसे

पुरुष तीर्थंकर होते हैं,ऊपर कहे हुये वीश धर्म द्रव्योंका स्वरूप संक्षेप से नीचे लिखते हैं। अरिहंत १, सिद्ध २, प्रवचनसंघ ३, गुरु आचार्य ४, स्थविर ५, वहुश्रुत ६, और तपस्वी ७, इन सातों पदोंकी वात्सल्यता अनुराग करनेसे, तथा यथावस्थित गुणोत्कीर्त्तन और अनुरूपोपचार करनेसे जीव तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है। पूर्वोक्त अरिहंतादि सातों पदोंका अपने ज्ञानमें वारंवार स्वरूप चिंतवन करनेसे जीव तीर्थंकरनाम कर्म बांधता है ८, दर्शन सम्यक्त्व ९; और विनय ज्ञानादि विषयोंमें १०, इन दोनोंको निरातिचारपाले तो जीव तीर्थंकर नाम कर्म बांधे। जो जो संयमके अवश्य करने योग्य व्यापार हैं उनको आवश्यक कहतेहैंइनमें (आवश्यकमें)अतिचार न लगावे तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे ११, मूलगुण (पांचमहाव्रत) और उत्तरगुण, (पिंड विशुद्धादि) ये दोनों निरतिचारपाले, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १२। क्षण,लव, मुहूर्त्तादि कालमें संवेग भावना शुभ ध्यान करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १३,उपवासादि तप करे,तथा साधु यति जनको दान देवेतो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १४। दश प्रकारकी वैयावृत्य करे तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे१५। गुरु आदिकोंके कार्य करनेसे तिनोंके चित्तको स्वास्थ्य रूप समाधि उपजावे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १६। अपूर्व अर्थात् नवा नवा ज्ञान पढे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १७। श्रुत भक्तियुक्त प्रवचन की प्रभावना करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १८। शास्त्रका बहुमान करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे १९। यथाशक्ति अर्हदुपदिष्ट मार्गकी देशनादि करके शासनकी प्रभावना करे, तो तीर्थंकर नाम कर्म बांधे २०। कोई जीव इन वीश कृत्योंमेंसे एक कृत्यसे तीर्थंकर नामकर्म बांधता है,कोई दो कृत्योंसे,कोई तीनसे, एवं यावत् कोई

कोई जीव वीश कृत्योंसे बांधता है। यह कथन ज्ञाता धर्मकथा, कल्पसूत्र, आवश्यकादि शास्त्रोंमें है। तथा तीर्थंकर भगवंत वदलेके उपकारकी इच्छा रहित, राजा, रंक, ब्राह्मण; और चंडाल, प्रमुख सर्व जातिके योग्य पुरुषोंको एकांत हितकारक संसारसमुद्रतारक धर्म देशना देते हैं। तीर्थंकर भगवंतके गुण तो इंद्रादिभी सर्व वर्णन नहीं कर सक्ते हैं, तो फिर मेरे अल्पबुद्धिवालेकी तो क्या शक्ति है? तोभी संक्षेपसे थोडासा वर्णन करता हूं। अनंतकेवलज्ञान, अनंत-केवलदर्शन; अनंतचारित्र, अनंततप, अनंतवीर्य, अनंतपांच लब्धि, क्षमा, निर्लोभता, सरलता, निराभिमानता, लाघवता, सत्य, संयम निरिच्छिकता, ब्रह्मचर्य, दया, परोपकारता, राग द्वेष रहित, शत्रु मित्र भाव रहित, कनक, और पत्थर दोनों ही ऊपर सम भाव, स्त्री और तृण ऊपर सम भाव, मांसाहार रहित, मदिरा पानरहित, अभ क्ष्यभक्षण रहित, अगम्य गमन रहित, करुणासमुद्र, सूर, वीर, गंभीर, धीर, अक्षोभ्य, परनिंदा रहित, अपने आप अपनी स्तुति न करे, जो कोई तिनके साथ विरोध करे तिसकोभी तारनेकी इच्छावाला, इत्यादि अनंतगुण तीर्थंकर भगवान्‌में होते हैं। यह तो देहावस्थामें जैनों के माने ईश्वरका स्वरूप है। जब देह रहित होते हैं, तब सिद्ध पदको प्राप्त होके अपनेही नित्यानंद स्वरूपमें वास करते हैं, परंतु जैनियोंका ईश्वर सृष्टिकी रचना, पुनः अवतार लेना, जगद्वासी जीवोंको उनके अच्छे बुरे कर्मानुसार स्वर्ग नरकमेंपहुंचाना, जगत् की हाकमीका अभिमानधारण करना, इत्यादि कर्त्तव्योंसे रहित है। यह जैनमत के माने ईश्वर का संक्षेपसे कथन किया है। नैयायिक वैशेषिक मतवालोंने मुख्य करके शिवको ईश्वर माना है जो कि जगत्स्रष्टा; और प्रलय कर्त्ता, तथा शुभाशुभ कर्मानुसार

स्वर्ग नरकमें जीवोंको पहुंचानेवाला, सर्व जगत्में व्यापक, और अवतार धारण करके जगत्में आता है, दुष्टोंका नाश करता है, और साधुओंकी रक्षा करता है, युग युगमें अवतारलेता है,इत्यादि कर्त्तव्यों सहित माना है, बौद्धमतमें प्रायः जैनियोंके सरिषा ही ईश्वर माना है, परंतु बौद्धोंने संसारमें फिर अवतार लेना माना है वेदमतवालोंने जो कुछ जगत् में है,सो सर्व ईश्वर ही है,ऐसामाना है। सांख्य और जैमनीमतवालोंने तो ईश्वर माना ही नहीं है॥

प्रश्न—वर्त्तमान कालकी जो पदार्थविद्या है उस विद्यानुकूल ईश्वरका वर्णन किस प्रकारसे होसक्ता है ?

उ०—वर्त्तमानकालकी जो पदार्थविद्या है,सो जैनमतके शास्त्रों से प्रतिकूल नहीं है, किंतु जैनमतके शास्त्रानुकूल ही है, क्योंकि अरिहंत भगवंतने जड़ पदार्थमें अनंत शक्तियां कथनकी हैं, तिस विषयमें एक योनिप्राभृतनामा शास्त्रभी था, तिसमें पदार्थोंके मिलान करनेका ही कथन था,अमुक अमुक पदार्थके मिलान करनेसे अमुक अमुक वस्तु उत्पन्न होती है। तथा विद्यमान प्राचीन जैन मतके शास्त्रोंका पदार्थ विद्यानुकूलही कथन है। जो कुछ इस दुनियामें होगया है, होरहा है, और आगेको होवेगा, सो सर्व ही जड़ चैतन्यके मिलापसे ही है। और जो इस दुनियामें जगत्के नियम हैं, सो सर्व जड चैतन्यकी शक्तियोंसे प्रवाहसे अनादि चले आते हैं,इस हेतुसे ही जैनमतके शास्त्रोंमें जगत् कर्त्ता ईश्वर नहीं माना है। और युक्तिद्वारा भी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है,सो पूर्व लिख आये हैं। यदि इन पदार्थोंकी शक्तियोंका नामही ईश्वर माना जावे,तबतो ऐसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानना जैन मतसे विरुद्ध नहीहै, इस हेतुसे पदार्थविद्यानुकूल ईश्वरका मानना

जैनियोंको असम्मत नहीं है। यदि कोई ऐसे कहे, कि सर्व पदार्थ और सर्व पदार्थकी शक्तियां,और सर्व जगत्के नियम,ये सर्व ईश्वर ने अपनी शक्तिसे रचे हैं। इसका उत्तर–विना उपादानकारणके कोई भी कार्य नहीं उत्पन्न होसक्ता, इसकथनमें सर्व विद्वानोंकी सम्मति है, इसवास्ते जड़ चैतन्य पदार्थ अनादि मानने पडेंगे। जब पदार्थ अनादि माने, तबतो तिनमें शक्तियां भी अनंत अनादि ही माननी ठीक हैं और वे शक्तियां अपना काल, स्वभाव, नियति, कर्म, और परस्पर प्रेरणादि निमित्त पाकर जगत्में प्रगट होती हैं, और नाश भी होती हैं,इस हेतुसे वर्त्तमानपदार्थविद्यानुकूल अन्य मतवालोंके ईश्वरको जगत् स्रष्टा मानना अप्रमाणिक है, आगे जो विद्वज्जन पदार्थ विद्यानुकूल जगत्का कर्त्ता ईश्वर जिस युक्ति द्वारा सिद्ध करेंगे, सो युक्ति देखकर जो सत्यासत्य होगा, तिसको फिर हमभी विचार कर सत्यका निर्णय करलेवेंगे॥

प्रश्न–हरेक धर्मके पुस्तकोंमें जो जो ईश्वर विषयक कथन है सो किस २ विषयमें मिलता है,और किस किस विषयमें भिन्नहै?

उ०–जैन, नैयायिक, पातंजल, बौद्ध, और वेद माननेवाले, ये सर्व ईश्वरको सर्वज्ञ मानते हैं, ईश्वर देह रहित है ऐसे सर्व मानते हैं, ईश्वर एक वस्तु अनादि है, ऐसे नैयायिक,वैशेषिक, वेदमानने वाले मानते हैं, और जैन, बौद्ध, ईश्वर पद अनादि मानते हैं,परं एक पुरुष नहीं॥ ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है,ऐसे नैयायिक, वैशेषिक वैदिकमत वाले मानते हैं, और जैन, बौद्ध, ईश्वरको सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते हैं। एक जैनके विना अन्य सर्व मतोंवाले ईश्वरको माताकी कूखसे जन्म लेके, देह धारण करके, अवतार होके जगत्में आनेवाला मानते हैं। जैन और बौद्धके विना अन्य

सर्व मतोंवाले ईश्वरको सर्वव्यापक मानते हैं, और जैन भी ज्ञातृस्वशक्तिकी अपेक्षा ईश्वरको सर्वव्यापक मानते हैं, परंतु देहसे नहीं॥ जैन और बौद्धके विना अन्य सर्व मतोंवाले ईश्वरको सर्व जीवोंका न्यायकर्त्ता, और फलप्रदाता मानते हैं। जैन और बौद्ध के विना अन्यमतोंवाले ईश्वर जो चाहे, सो कर सकता है, ऐसा मानते हैं। अजर, अमर, अज, अलख, निरंजन, अव्यय, अचिंत्य असंख, ब्रह्म, ईश्वर, अनंत, अनंग, योगीश्वर, ज्ञानस्वरूप, अमल, अविकारी, अक्षय, परमेश्वर, परमेष्ठी, अधीश्वर, शंभू, स्वयंभु, पारगत, त्रिकालवित्, भगवान्, जगत्प्रभु, अचल, अविनाशी, इत्यादि स्वरूप विशेषणोंसे तो सर्व मतोंमें एक सरिषा ईश्वर माना है, परंतु अर्थांशसे किसी किसी स्थानमें भेद पड़ जाता है॥

प्रश्न—वर्त्तमानकालमें ईश्वरके होनेके विषयमें लोकोंका क्या ख्याल है?

उ०—नास्तिकोंका तो यह ख्याल है, कि पृथिवी, जल, अग्नि वायु, और आकाश, इन पांचों वस्तुओंके विना अन्य कोई जीव, ईश्वर, पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, मोक्षादि वस्तु नहीं है, किंतु इन पूर्वोक्त वस्तुओंसे स्वतःही सर्व कुछ बनता है, और नाश होता है। बहुत लोकोंका यह ख्याल है, कि जो कुछ जगतमें होता है, सो सर्व ईश्वरकी इच्छाहीसे होता है, ईश्वरही उत्पन्न करता है, ईश्वर ही पालन करता है, और ईश्वरही नाश करता है। कितनेक लोकों का ख्याल यह है, कि जगत् ईश्वरने रचा है, तिसमें जो जीव जैसा जैसा शुभाशुभ कर्म करता है, तिस जीवको तिन कर्मोंके अनुसार स्वर्ग नरकादिकोंका सुख दुःखादि फल ईश्वरही देता है। वेदांतियों का असली यह ख्याल है, कि जो कुछ जगत्में है, सो सर्व ब्रह्मका

ही रूप है और ब्रह्मही नाना रूप धारके क्रीडा करता है। जैनीयों का यह ख्याल है, कि जब संसारी जीव, कितने ही जन्मांतरोंमें बहुत शुभ अभ्यास करता हुआ जिस जन्ममें तीर्थंकर अरिहंत पद को प्राप्त होता है, तब सर्वमनवाले योग्यजीवोंको मोक्षप्राप्ति के रस्तेका उपदेश देते हैं, जिससे इस जगत्में धर्म करनेकी प्रवृत्ति होती है। जब तीर्थंकर अरिहंत देह छोडके मोक्षपदको प्राप्त होते हैं, तब सिद्ध स्वरूपको प्राप्त होकर ज्ञानानंद अनंत जीवन अनंत सुखोंमें स्थित होते हैं। पीछे जगत् व्यवहारका कोई भी काम नहीं करते हैं। इत्यादि नाना प्रकारका ख्याल लोकोंका हो रहा है॥

प्रश्न–मनुष्यका स्वभाव क्या है ?

उत्तर–मनुष्यका स्वभाव यह है, कि भले प्रकार मानसन्मान मुझे मिले, अन्योंसे मैं अधिक सुखी, धनवान्, परिवारवाला, रूपवान्, निरोगी, बलवान्, होवुं। जगत्में मेरा यशोवाद होवे, और भविष्यमें भी मुझको अच्छेपदकी प्राप्ति होवे, तथा छल, दंभ, क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, इत्यादि कर्मोंकी उपाधिसे मनुष्यका स्वभाव बुरा होता है। और सरलता, क्षमा, आर्जव, मार्दव, निर्लोभता, राग, द्वेष रहित पणा, संतोष इत्यादि स्वभाव प्रायः मनुष्य का धर्मके अभ्यास करनेसे होता है॥

प्रश्न–मनुष्यकी प्रभुताई क्या है ?

उत्तर–मनुष्य अपने आपको बुद्धिमें सबसे अधिक मानता है।

प्रश्न–मनुष्यमें न्यूनता क्या है ?

उत्तर–जीवनमोक्ष ईश्वरपदमें, और सिद्ध स्वरूप ईश्वरपदमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतबल, अनंतसुख, अमर, अज, अविकार, अमल, अचर, अक्षय, इत्यादि अनंत शक्तियां हैं। और जीव

की यह शक्तियां कर्मोपाधिसे आच्छादित होरही हैं यही जीवमें ईश्वरकी अपेक्षा न्यूनता है॥

प्रश्न-मनुष्यकी पदवी इस सृष्टिमें क्या है ?

उत्तर-नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता, इन चारों गतियोंमें से मनुष्यका तीसरा दरजा है, और सुखकी अपेक्षा मनुष्यका दूसरा दरजा है, ज्ञान प्राप्ति करनेमें, धर्म करणीमें, मोक्ष प्राप्ति करनेमें और ईश्वरपद प्राप्ति करनेमें प्रथम दरजा है, तथा बुराइयां करने में भी प्रथम दरजा है॥

प्रश्न-मनुष्य होनेकी आत्मामें कौनसी शक्तियां हैं ? और अमर, तथा ईश्वर होनेकी शक्ति है, कि नहीं ?

उत्तर-आत्मामें मनुष्य होनेकी नीचे लिखी हुई शक्तियां हैं। मिथ्यात्व कषायका स्वभावसे ही मंदोदय, भद्रिक परिणाम, धूल रेखा समान कषायोदय, सुपात्र, कुपात्रकी परीक्षा रहित, यश, कीर्ति की विशेष वांच्छा रहित दान देना, स्वाभाविक दान देनेमें तीव्र रुचि, क्षमा, आर्जव, मार्दव, दया, शौच, सत्य, पूजाप्रियपरिणाम और कापोत लेश्याके परिणामादि बहुत शक्तियां आत्मामें मनुष्य होनेकी हैं। यद्यपि प्रायः यह शक्तियां कर्मप्रकृतियोंके कथनमें हम पूर्व लिख आये हैं, तोभी स्थान शून्यताके कारण यहां लिखी हैं

आत्मामें ईश्वर होनेकी भी शक्ति है, परंतु जब इस जीवके यह अठारह १८ दूषण दूर होजाते हैं, तब इसमें ईश्वरत्व शक्ति प्रगट होती है। वे अठारह दूषण यह हैं॥

"अंतरायादानलाभ वीर्य भोगोपभोगगाः।
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च॥१॥

कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा चाविरतिस्तथा।
रागोद्वेषश्च नो दोषास्तेषा मष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥

"इत्याचार्यश्रीहेमचंद्रविरचितायामभिधान चिंतामणौनाममालायां प्रथमे देवाधिदेवकांडे व्यावर्णितमस्ति ॥"

इन दोनों श्लोकोंका अर्थ संक्षेपसे लिखते हैं। दान देनेमें अंतराय,सो दानांतराय १, लाभागत अंतराय सो लाभांतराय २, वीर्यगत जो अंतराय सो वीर्यांतराय ३, जो एक वार भोगने में आवे, सो भोग पुष्पमालादि, तद्गत जो अंतराय सो भोगांतराय ४, जो वार वार भोगनेमें आवे, सो उपभोग, वस्त्र, स्त्री, घर, कंकण, कुंडलादि, तद्गत जो अंतराय, सो उपभोगांतराय ५, इन पांचों विघ्नोंके क्षय होनेसे भगवंतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होती हैं। जैसे निर्मल चक्षुका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होती है,चाहे देखे चाहे न देखे, परंतु शक्ति विद्यमान होती है। तैसे ही अर्हन् भगवंतको पांच शक्तियां प्रगट होती हैं, पीछे दानादि चाहे करें,चाहे न करें,परंतु शक्ति विद्यमान होती है, जो इन पांच शक्तियोंसे रहित होवे,सो परमेश्वर पदके योग्य नहीं ५

छट्ठा दूषण हंसना, हास्य जो आता है, सो अपूर्व वस्तुके देखने से वा सुननेसे, वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे आता है, और हास्यका मोहकर्मकी प्रकृति रूप उपादानकारण है, सो यह दोनोंही कारण अर्हन् भगवान्में नहीं है। अर्हन् भगवान् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। उनके ज्ञानमें कोई अपूर्व ऐसी वस्तु नहीं, जिसको देखे, सुने, अनुभवे आश्चर्य होवे, इसवास्ते कोई भी हास्यका निनिमित्त कारण नहीं है। और मोहकर्म तो अर्हन् भगवान्ने सर्वथा ही क्षय किया है, तो फिर वह उपादानकारण क्योंकर संभवे,इस

हेतुसे अरिहंत भगवंतमें हास्य रूप दूषण नहीं है। क्योंकि यदि हसन शील होगा, तो अवश्य असर्वज्ञ, असर्वदर्शी, और मोहकरी संयुक्त सिद्ध होगा ॥ ६ ॥

सातवां दूषण रति, सोभी परमेश्वरमें नहीं है, क्योंकि जिस की प्रीति पदार्थों पर होगी. सो अवश्य सुंदर शब्द, रूप, रस, गंध स्पर्श, स्त्री, आदिके ऊपर प्रीतिमान होगा। जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थ की लालसावाला होगा, और जो लालसा वाला होगा, सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसे दुःखी होगा॥७॥

आठवां दूषण अरति, जिसकी पदार्थों पर अप्रीति होगी वह आपही अप्रीति रूपी दुःखसे दुःखित है, तो वह अर्हन् भगवान् कैसे होसकेगा ? ८

नववां दूषण भय, सो जिसने अपनाही भय दूर नहीं किया, सो अर्हन् परमेश्वर कैसे होवे ? ९

दशवां दूषण जुगुप्सा है, सोमलीन वस्तुको देखके घृणाकरनी, सो परमेश्वरके ज्ञानमें सर्व वस्तुका भासन होता है, जो परमेश्वर में जुगुप्सा होवे, तो वड़ा दुःख होवे, इसवास्ते जुगुप्सावाला अर्हन् कैसे होवे ? १०

ग्यारहवां दूषण शोक है, सो जो आपही शोकवाला है, सो परमेश्वर नहीं। ११

वारहवां दूषण काम है, सो आपही जो विषयी है, स्त्रीयोंके साथ भोग करता है, ऐसे विषयाभिलाषीको कौन वुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मान सक्ता है ? १२

तेरहवां दूषण मिथ्यात्व है, सो जो दर्शन मोहकरी लिप्त है सो भगवान् नहीं ॥ १३

चौदवां दूषण अज्ञान है, सो जो आपही मूढ है, वह अर्हन् सर्वज्ञ भगवान् कैसे हो सके ? १४

पंदरहवां दूषण निद्रा है, सो जो निद्रामें होता है, वह निद्रामें कुछ नहीं जानता, और अर्हन् भगवान् तो सदा सर्वज्ञ हैं, सो निद्रावान् कैसे होवें ? १५

सोलवां दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है; वह सर्वाभिलाषीहै,तो वह तृष्णावाला कैसे अर्हन्भगवान् होसके?

सतरहवां और अठारहवां ये दोनों दूषण राग, औरद्वेष हैं,सो रागी द्वेषी मध्यस्थ नहीं होता, और जो रागी द्वेषी होता है, तिस में क्रोध, मान, माया का संभव है, भगवान् तो वीतराग, समशत्रु मित्र, सर्व जीवों पर सम बुद्धि, न किसीको सुखी,और न किसीको दुःखी करे, यदि सुखीदुःखी करे, तो वीतराग करुणासमुद्र कदापि नहीं होसक्ता है; इस कारणसे राग द्वेषवाला अर्हन् भगवान् परमेश्वर नहीं। १७। १८।

इन अठारह दूषणमें से एकभी दूषण जिसमें हो, वह अर्हन् भगवान् नहीं होसक्ता है, और जिसमें अठारह दूषण पूर्वोक्त न होवें, सो अर्हन् भगवान् होता है। जैसे एक हीरा तो शाण ऊपर चढ़के शुद्ध होगया, और एक हीरा अभी खानमें ही पड़ा है,यद्यपि खानवाला हीरा मलीन है, तोभी तिसमें असली हीरेके गुण विद्यमान हैं, जब उस हीरेको कारीगर शाणादि निमित्त मिलेंगे, तबतो वह भी हीरा निर्मल हीरोंकी गिनतीमें आजावेगा। ऐसेही इसजीव में ईश्वर होनेकी शक्तियां हैं,परंतु अनादिकालसे आठ कर्मके मल से इसकी शक्तियां आच्छादित हो रही हैं, जिस जीवको कालादि पांच निमित्तोंसे गुरु उपदेश रूप शाणसे जब रगड़ा जावेगा, तब

इसके ईश्वरत्व होनेकी शक्तियां प्रगट होजावेंगी, और तबही ईश्वर होजावेगा। क्योंकि ईश्वर किसी एक पुरुषका नाम नहीं है, किंतु अनादिकालसे जो अनंत जीव मोक्ष पद अर्थात् सिद्ध पदको प्राप्त होगये हैं, और आगेको होवेंगे, तिस पदका ही नाम ईश्वर है ॥

जैसे यह संसार प्रवाहसे अनादि है, तैसे सिद्धपद भी अनादि है। जीव भी अनादिकालसे ही मोक्षपदको प्राप्त होते चले आते हैं। यदि मनमें ऐसी शंका उत्पन्न होवे, कि इसतरह अनादिकाल से जीव मोक्षपदको प्राप्त होते मानें, तबतो किसीकालमें सर्व जीव मोक्षपदको प्राप्त होजावेंगे, तबतो यह संसार जीवोंसे रहित हो जावेगा। इसका उत्तर-जो राशी गिनतीमें अंतवाली है, तिस का तो अंत आजावेगा, परंतु जो राशी नाम स्वरूपसेही अनंत है, तिस का अंततो कदापि नहीं आवेगा। जैसे पृथिवी, और आकाश, इन दोनों को मापें, तब पृथिवीका अंत आजावेगा, क्योंकि वह सांत है और आकाशको मापें, तो तिसका अंत नहीं आवेगा, क्योंकि वह अनंत है। इसी तरह जगत्वासी जीवोंकी राशीभी अनंत है, इस वास्ते अनादि अनंतकाल तक मोक्ष जानेसे जीव राशीकी गिनती का भी कभी अंत नहीं आवेगा, यदि कहोगे, केवलज्ञानी ईश्वरके ज्ञानमें तो सर्व जीवोंकी गिनती होनी चाहिये। और यदि केवल ज्ञानीके ज्ञानमें भी जीवोंकी गिनतीका अंत नहीं आया, तो केवल ज्ञानमें भी न्यूनता रही। उत्तर-केवल ज्ञानी सअंत वस्तुको सअंत ही देखता है। और अनंतको अनंतही देखता है, जैसे आकाश अनंत है, तिसको अनंतही देखता है। यदि यह कथन न मानोगे, तब आपके माने ईश्वर में भी यह दूषण आवेगा, क्योंकि ईश्वर को ईश्वरवादीयोंने अनादि अनंत माना है तो ईश्वर अपनी आदि

और अंत देखता है, वा नहीं ? यदि देखता है, तबतो ईश्वरकी उत्पत्ति सिद्ध हुई, तिस उत्पत्तिसे पहले ईश्वर नहीं था, यह सिद्ध हुआ। और ईश्वरके अंत देखनेसे ईश्वरका नाशभी होजावेगा। यदि कहोगे, कि ईश्वर अपनी आदि अंत नहीं जानता, क्योंकि ईश्वरकी आदि और अंत है नहीं, तिसको कैसे जाने। तबतो ईश्वर के ज्ञानमें न्यूनता रही, जो अपना आदि अंत न देखा॥ इसलिये हे भव्य! ऐसे ही जीवोंकी गिनती और आकाशका अंत नहीं है, इसवास्ते केवली भगवान् भी तिनका अंत नहीं देखते हैं। जो वस्तु नहीं तिसकी नास्ति देखते हैं, और जो हैं, तिसकी अस्ति देखते हैं, यह कथन प्रसंगसे लिखा है॥

प्र०—भविष्य जन्म संबंधी अनेक मतोंवाले कैसे २ मानते हैं ?

उ०—प्रथम तो जीवात्माको बहुत मतोंवाले अनादि मानते हैं, तिनके मानने अनुसार तो यह जीवात्मा पूर्व जन्मके ग्रहे स्थूल शरीरको छोडके इस जन्ममें अपने करे शुभाशुभ कर्मानुसार विचित्र प्रकारका नवीन शरीर धारण कर रहे हैं, जो पूर्व जन्मके शरीरको छोड़के इस जन्ममें नवीन शरीरधारा, इसीका नाम भविष्य जन्म है। जैसे पूर्व जन्मोंके करे कर्मानुसार यह जन्म धारा है, एसेही इस जन्म और पूर्व जन्मांतरोंके करे कर्मानुसार भविष्य जन्मभी अवश्य धारण करेगा, जब सर्व कर्मोंको जिस जन्ममें सर्वथा नाश करेगा, तो भविष्य जन्म न होवेगा॥ और जिस मतवाले यह मानते हैं, कि अनादि जीवात्मा नहीं है, किंतु ईश्वरने नवीन ही जीव उत्पन्न किये हैं, यह उनकी बडी भूल है, क्योंकि ईश्वरका कर्त्तापणका खंडन तो हम प्रथम ऊपर लिख आये हैं, विना उपादानकारणके कोईभी वस्तु जगत्में, उत्पन्न नहीं होसकी है,

इसवास्ते जैन, बौद्ध, वेद, न्याय, वैशेषिक,मीमांसकादि सर्व मतों वाले जीवके करे कर्मानुसार भविष्य जन्म विचित्र प्रकारका होना मानते हैं। कितनेक मतवाले ऐसे भी मानते हैं, कि जैसा स्वरूप इसका इस जन्ममें है, तैसा ही भविष्य जन्ममें होगा। पुरुष पुरुष ही होगा, स्त्री स्त्री ही होवेगी, पशु पशु होवेगा, इत्यादि यह मत भी वेदानुयायी है, परं यह मानना सत्य नहीं है,क्योंकि इस जगत् में प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, कि श्रृंगसे भी शर उत्पन्न होता है, और शरसे भी शर उत्पन्न होता है। श्रृंगको सरसोंका लेप करके धरतीमें बोनेसे अनेक अन्न उत्पन्न होते हैं। तथा गोलोम, और अविलोमसे दूर्वा उत्पन्न होती है। ऐसेही वृक्षायुर्वेदमें विलक्षण अनेक द्रव्योंके संयोगसे जिनका जन्म हुआ है, ऐसी वनस्पतियें देखनेमें आती हैं। तथा जैनमतके योनि प्राभृत शास्त्रमें विसदृश अनेक द्रव्योंके संयोगही जिनकी योनि है,ऐसे सर्प, सिंहादि प्राणी, तथा मणि, रत्न,हेमादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं,ऐसा लिखा है। पूर्वोक्त कथनानुसार कितनीक वस्तु वर्त्तमान पदार्थ विद्यासे भी सिद्ध होती हैं। इसवास्ते यह एकांत सिद्ध नहीं है,कि जैसा कारण होवे, वैसाही कार्य होता है इसकी विशेष चर्चा विशेषावश्यक सूत्रमें है। तथा कितनेक ऐसे भी कहते हैं, कि जैसे सिंह का जीव है, तिसका स्वभाव तो जीवहिंसाही करनेका है, इसवास्ते वह जीव मरके इससे भी अधिक पापी होवेगा, तहांसे मर के अगले जन्ममें फेर अधिक पापी होवेगा, ऐसेही अधिकअधिक पापी होनेकी परंपरा चली जावेगी, तो फेर वह जीव मनुष्य कैसे होसक्ता है ? उत्तर—जैनमतके प्रज्ञापना, भगवती, प्रमुख शास्त्रोंमें ऐसा कथन है, कि सर्व जीवोंकी सत्तामें मनुष्यादि सर्व योनिमें

उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभ कर्मोंके भेद असंख्य अनंत तरहके सदा ही जमा रहते हैं, तिनमेंसे जो कर्म स्थिति क्षयसे उदयावलिमें आता है, सो अपने अनुरूपही योनिमें उत्पन्न करता है, यह नियम नहीं है, कि पिछले अनंत २ भवमें जैसे २ शुभाशुभ कर्म किये हैं, तिनका अनंत २ भवमें ही फल अवश्य होता है। जैसे चोर चोरी करता है, तिस चोरीके कर्मका फल किसीको तो तत्कालही होता है, किसीको देर पाकर होता है, और किसीको तिस जन्ममें ही नहीं होता है। इसी तरह किसी जीवको अपने करे शुभाशुभ कर्म का फल तत्कालही प्राप्त होता है, किसीको उसी जन्ममें, किसी को जन्मांतरमें, और किसीको जन्मांतरोंमें होता है। इन कर्मोंका स्वरूप बहुत विचित्र प्रकारका, और गहन है, सो षट् कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, आदि शास्त्रोंमें है, और यह शास्त्र ऐसे गहन हैं, कि विना गुरु गम्यताके यथार्थ स्वरूप मालूम होना कठिन है, तथा जो इन पूर्वोक्त शास्त्रोंका अच्छी तरहसे अभ्यास करेगा, उस को हमारे लेखकी सत्यता मालूम होवेगी। इसवास्ते अपने अपने कर्मानुसार सर्व जीवोंको नाना प्रकारकी योनियोंमें उत्पन्न होना सिद्ध है। और जो चारवाकमतवाले नास्तिक चारों तत्त्वोंसे ही जीवकी उत्पत्ति मानते हैं, और अगला पिछला जन्म, नरक, स्वर्ग इत्यादि नहीं मानते हैं, तिनके मतका खंडन नंदीसूत्रकी टीकासे लिखा जाता है। चार्वाक कहते हैं, कि आत्मा ही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष वचन कलहा करते हैं? जब आत्मा ही नहीं है, तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक और जैमनीय, यह जो षट् दर्शन हैं, सो निःकेवल लोकोंको भ्रममें डालकर भोग विलास छुडा देते हैं, वास्तवमें आत्मा कोई वस्तु नहीं है, इसवास्ते

हमारा मत अच्छा है। यदि आत्मा है,तो तिसकी सिद्धिकैसे है ?

उ०-प्रति प्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्ति से सिद्ध है, तथाहि-यह जो चैतन्य है, सो भूतोंका धर्म नहीं है, यदि भूतोंका धर्म होवे तबतो पृथिवीकी कठिनताकी तरह सर्वत्र सर्वदा उपलंभ होना चाहिये, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंभ होता नहीं है, क्योंकि लोष्टादिकोंमें और मृत अवस्थामें चैतन्य उपलंभ नहीं होता है॥

पूर्व०-लोष्टादिकोंमें और मृत् अवस्थामें भी चैतन्य है, केवल शक्तिरूप करके है, इसवास्ते उपलंभ नहीं होता है॥

उ०-दो विकल्पके न उल्लंघनेसे यह आपका कहना अयुक्त है, तथाहि-वह शक्ति चैतन्यसे विलक्षण है,अथवा चैतन्यही है ? यदि कहोगे,विलक्षण है,तवतो शक्तिरूप करके चैतन्य है ऐसा मत कहो,क्योंकि नहीं पटके विद्यमान हुए पटरूप करके घट रहता है आह च प्रज्ञाकर गुप्तोपि :—

रूपांतरेण यदि तत्तदेवा स्तीति मारटीः ।
चैतन्यादन्य रूपस्य भावे तद्विद्यते कथम्।१

यदि दूसरा पक्ष मानोगे, तवतो चैतन्यही वह शक्ति है, तो फिर क्यों नहीं उपलंभ होती ? यदि कहोगे, कि आवृत्त होनेसे उपलंभ नहीं होती है, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अभाव है ? वा परिणामांतर है ? अथवा भूतोंसे अतिरिक्त और वस्तु है ? उस में विवक्षित परिणामोंका अभाव तो नहीं है, क्योंकि एकांत तुच्छ होने करके तिस विवक्षित परिणाम अभावको आवरण शक्ति नहीं

है, अन्यथा तिसको अतुच्छ रूप होनेसे सोभी भाव रूप होजावेगा और जब भाव रूप हुआ, तबतो पृथिवी आदिकोंमें से अन्यतम हुआ, क्योंकि :--

"पृथिव्यादीन्येव भूतानि तत्व मितिवचनात्"

और पृथिवी आदि जो भूत हैं, सो चैतन्यके व्यंजक है, परंतु अवारक नहीं। तब कैसे अवारकत्व सिद्ध होवे ?

और यदि कहोगे, कि परिणामांतर है, सोभी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरको भूत स्वभाव होने करके भूतोंकी तरह चैतन्यका व्यंजक ही होसक्ता है, अवारक नहीं॥

और यदि कहोगे, कि भूतोंसे अतिरिक्त वस्तु है, तो भी बहुत ही असंगत है, क्योंकि भूतोंसे अतिरिक्त वस्तु माननेसे :--

'चत्वार्येवपृथिव्यादि भूतानि तत्वमिति'

तत्व संख्याका व्याघात होजावेगा॥

एक औरभी बात है, कि यह जो चैतन्य है, सो एक २ भूत का धर्म है, वा सर्व भूत समुदायका धर्म है ? एक २ भूतका धर्म तो है नहीं, क्योंकि एक २ भूतमें दीखता नहीं, और एक२ परमाणु में संवेदन उपलंभ नहीं होता है। यदि प्रतिपरमाणुमें होवे, तबतो पुरुष सहस्र चैतन्य वृंदकी तरह परस्पर भिन्न स्वभाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, और देखनेमें एक रूप आता है, "अहंपश्यामि" अर्थात् मैं देखता हूं, "अहंकरोमि" मैं करता हूं, ऐसे सकल शरीर का अधिष्ठाता एक उपलंभ होता है॥

यदि समुदायका धर्म मानोगे सोभी प्रत्येकमें अभाव होनेसे

असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वह समुदायमें भी नहीं होसक्ता है,जैसे रेतकी कणियोंमें तैल ॥

यदि कहोगे कि मद्यांगमें मदशक्ति नहींहै,समुदायमें होजाती है, ऐसे चैतन्य भी होजावे, तो क्या दोप है ? यहभी अयुक्त है, क्योंकिप्रत्येक मद अंगोंमें मद शक्तिकेअनुयायी माधुर्यादिगुणहोते हैं। तथाहि-दीखती है माधुर्यादि शक्ति इक्षुरसमें,धातकी फूलों से थोड़ीसी विकलता उत्पादक शक्ति, ऐसे चैतन्य सामान्य प्रकार से भूतोंमें उपलंभ नहीं होता है, तब कैसे भूतसमुदायमें चैतन्य हो सकता है?यदि प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें होजावे,तब तो सर्व समुदायसे सर्व कुछ होजाना चाहिये,यह अतिप्रसंग होवेगा।

एक और भी बात है, कि यदि आपने चैतन्य धर्म माना है, तबतो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मी भी मानना चाहिये। यदि अनुरूप न मानोगे, तबतो जल, और कठिनता इन दोनोंको धर्म धर्मी मानना चाहिये। ऐसे भी मत कहना, कि भूत ही धर्मी है,क्योंकि भूत चैतन्यसे विलक्षण है । तथाहि-चैतन्य वोधस्वरूप और अमूर्त्त है, और भूत इससे विलक्षण है, तब कैसे परस्पर धर्मधर्मी भाव होसक्ता है ? और यह चेतन्य भूतोंकाकार्यभी नहीं है, अत्यंत विलक्षण होनेसे कार्य कारण भाव कदापि नहीं होता है ॥ उक्तंच

"काठिन्यावोध रूपाणि भूतान्यध्यक्ष सिद्धितः।
चेतना च नतद्रूपा साकथं तत्फलं भवेत्"॥ १॥

एक और भी बात है, कि यदि भूत कार्य चेतना होवे, तबतो सकल जगत् प्राणीमय होवे, यदि कहोगे, कि परिणति विशेष सद्भावके अभावसे सकल जगत् प्राणीमय नहीं होता है,तो वह परिणति विशेष सद्भाव सर्वत्र किसवास्ते नहीं होता है? सोभी परि-

णति भूतमात्र निमित्तक ही है,तव कैसे तिसका किस जगह होना न होना सिद्ध होवे ? तथा वह परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है ? यदि कहोगे, कि कठिनादि रूप है,सो दिखाते हैं, कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हुये काष्टादिकोंमें दीखते हैं, तिसवास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है,सो प्राणीमय है,शेष नहीं। यह भी व्यभिचार देखनेसे असत् है, तथाहि–अविशिष्ट भी कठिनत्वादि विशेष के हुए कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, और किसी जगह कठिनत्वादि विशेषके विनाभी संस्वेदज और घने आकाशमें संमूर्च्छिम उत्पन्न होते हैं ॥

एक और भी वात है,कि कितनेक जीव समान योनि वाले भी विचित्र वर्ण संस्थानवाले दीखते हैं,तथाहि–गोवर आदि एक योनि वाले भी कितनेक नीले शरीर वाले होते हैं,अपर पीत शरीर वाले, अन्य विचित्र वर्णवाले होते हैं, और संस्थान (कद) भी इनोंका परस्पर भिन्न होताहै.यदि भूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे,तवतो एक योनिके सर्व एक वर्ण संस्थानवाले होने चाहियें, परंतु सो तो होते नहीं हैं, इसवास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके वश तैसे २ उत्पन्न होता है, यही सिद्ध मानना चाहिये। यदि कहोगे, कि आत्मा होवे तव जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके होते ही संवेदन उपलब्ध होता है, और देहके अभावमें भस्म अवस्था में नहीं दीखता है, तिसवास्ते आत्मा नहीं, किंतु संवेदनमात्र ही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देह ही में आश्रित है, भींतके चित्रवत्, चित्रभींतके विना नहीं रह सकता है, दूसरी भींत ऊपर संक्रमण भी नहीं होता है, किंतु भींत ऊपर उत्पन्न होता है,और भींतके साथही विनाश होजाता है, संवेदन भी ऐसेही जानलेना।

यह भी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त्त है, और आंतर शरीर अतीव सूक्ष्म है, इसवास्ते दृष्टि गोचर नहीं होता॥

तदुक्तं-"अंतराभावदेहोऽपि सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते।
निःक्रामन् प्रविशन् वात्मा नाभावोऽनीक्षणादपि" १॥

तिसवास्ते आंतः शरीर युक्तभी आत्मा आता जाता हुआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसे उपलब्ध होता है। तथाहि-तत्काल उत्पन्न हुए भी कृमी जीवको अपने शरीर विषे ममत्व है, घातकको जान करके दौड़ जाता है, जिसका जिस विषे ममत्वहै सो पूर्वले ममत्वके अभ्यास पूर्वक है, और जितना चिर किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता उतना चिर उस वस्तुमें किसीको भी आग्रह नहीं होता है, तवतो जन्मकी आदिमें जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अभ्यास पूर्वक संस्कार निबंधन है, इसवास्ते आत्माका जन्मांतरसे आना सिद्ध हुआ॥

उक्तंच-"शरीराग्रहरूपस्य चेतसःसंभवो यदा।
जन्मादौदेहिनः दृष्टः किं न जन्मांतरागतिः" १॥

अथ आगति प्रत्यक्षसे नहीं दिखाईदेतीहै, तव कैसे तिसका अनुमानसे वोध होवे ? यह आपका कहना कुछदूषण नहीं है, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं होसक्ती है, परस्पर विषयको परिहार करके प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तना बुद्धिमान् मानते हैं, तव कैसे यह आपका दूषण है ?

आहच-"अनुमेयेस्निनाध्यक्ष मितिकैवात्रदुष्टता।
अध्यक्षस्यानुमानस्य विषये विषयो नहि" १॥

और जो चित्रका दृष्टांत आपने कहा था, सोभी विषम होनेसे अयुक्त है तथाहि-चित्र जो है, सो अचेतन है, और गमन

स्वभाव रहित है, और आत्मा जो है, सो चैतन्य है, और कर्मोंके वशसे गति आगति करता है, तब कैसे दृष्टांत और दार्ष्टांतकी साम्यता होवे? जैसे देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करके ग्रामांतरमें जाता रहता है, तैसे ही आत्मा भी विवक्षित भवमें देहको त्यागकर भवांतरमें देहांतर रचकर रहता है॥

और जो आपने कहा था, कि संवेदन देहका कार्य है, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि चक्षुषादि इंद्रिय द्वारा उत्पन्न होनेसे चक्षुषादि संवेदन कथंचित् देहसे भी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानसिक ज्ञान है, वह कैसे देहका कार्य होसक्ता है? तथाहि–सो मानिसक ज्ञान देहसे उत्पाद्यमान होता हुआ इंद्रिय रूपसे उत्पन्न होता है? वा अनिंद्रिय रूपसे उत्पन्न होता है? वा केश नखादि लक्षणसे उत्पन्न होता है? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं, यदि इंद्रिय रूपसे उत्पन्न होवे, तवतो इंद्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थका ही ग्राहक होना चाहिये इंद्रिय ज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सक्ता है, इस सामर्थ्यसे उपजायमान मानसिकज्ञानभी इंद्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थका ही ग्रहण कर सकेगा॥

जब चक्षु रूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं। तब वह रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्योंकि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसे। और रूप विषय व्यावृत्तिके अभावमें मनोज्ञान है, तिसवास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेही शेष इंद्रियोंमें भी जानलेना, तब कैसे मनोज्ञानको वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे?

उक्तंच–"अक्षव्यापार माश्रित्य भवदक्षज मिष्यते।
तद्व्यापारो न तत्रेति कथमक्ष भवं भवेत्" १॥

अथ अनिंद्रिय रूपसे है,सोभी तिसको अचेतन होनेसे अयुक्त है, और केश नखादिक तो मनोज्ञान करके स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलंभ होते हैं, तब कैसे तिनसे मनोज्ञान होवे ?

आहच-"चेतयंतो न दृश्यंते केशश्मश्रुनखादयः।
ततस्तेभ्योमनोज्ञानं भवतीत्यति साहसं" १ ॥

यदि केश नखादिकों करके प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तबतो तिनोंके उच्छेद होनेसे मूलसे ही मनोज्ञान नहीं होवेगा, और केश नखादिकों को उपघात होनेपर ज्ञानभी उपहत होना चाहिये,परंतु सो तो होता है नहीं, इसवास्ते यह तीसरा पक्षभी ठीक नहीं ॥

एक औरभी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ भेतृत्व और स्मृतिपाटवादि विशेष जो हैं, सो अन्वय व्यतिरेक करके अभ्यास पूर्वक देखे हैं, तथाहि-वही शास्त्र यहां अपोहादि प्रकार करके यदि वार वार विचारें, तब सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, अर्थविबोध उल्लास होता है, और स्मृतिपाटव,अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसे एक शास्त्रविषे अभ्याससे सूक्ष्मार्थ भेतृत्व शक्तिके और स्मृतिपाटवके होनेपर अन्य शास्त्रोंमें भी सहज से ही सूक्ष्मार्थाव बोध,और स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसे अभ्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ भेतृत्वादिक मनोज्ञान के विशेष देखे हैं,और किसीको अभ्यासके विनाभी देखते हैं,तिस वास्ते अवश्य परलोकका अभ्यासहेतुहै, क्योंकिकारणके साथ कार्य का अन्यथानुपपन्नपणा है, तिस प्रतिबंधसे अदृष्ट तिसके कारण की भी सिद्धि है, तिसवास्ते जीवका परलोकमें जानासिद्ध हुआ ॥

और देह क्षयोपशमका हेतु है, इसवास्ते देह भी कथंचित् ज्ञान को उपकारी हम मानते हैं, नहीं देहके दूर होनेसे सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती, जैसे अग्नि करके घटको कुछ विशेषता है, परंतु

अग्निकी निवृत्ति होनेपरघट मूलसेही उच्छेद नहीं होजाताहै,केवल कुछक विशेष दूर होजाता है, जैसे सुवर्णकी द्रवता, ऐसे यहां भी देहकी निवृत्ति होनेपर कोईक ज्ञान विशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्ति होता है, परंतु समूल ज्ञानका उच्छेद नहीं होता है। यदि देह ही ज्ञानका निमित्त मानोंगे, और देहकी निवृत्तिसे ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे,तबतो स्मशानमें देहके भस्म होनेपर तो ज्ञान न होवे,परंतु देहके विद्यमान होनेपर मृत अवस्थामें किसवास्ते नहीं होता ?

यदि कहोगे कि प्राण और अपान भी ज्ञानके हेतु हैं तिनके अभावसे ज्ञान नहीं होता है, यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं होसक्ते हैं, ज्ञानही से तिनकी प्रवृत्ति होनेसे। तथाहि–जब प्राणापानका करनेवाला मंद इच्छा करता है, तब मंद होता है, और जब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, यदि देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, और प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तबतो इच्छाके वशसे प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता, और श्यामता, वह इच्छाके वशसे प्रवृत्त नहीं होती हैं, यदि प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तबतो प्राणापानके थोड़े वा बहुतके होनेसे ज्ञानभी थोड़ा वा बहुत होना चाहिये,क्योंकि जिसका कारण न्यून अथवा अधिक होवेगा,तब उसका कार्य भी न्यून वा अधिक होवेगा जैसे मिट्टीका पिंड बड़ा वा छोटा होवेगा, तब घटभी बड़ा, और छोटा होवेगा, अन्यथा वह कारण भी नहीं। तुमारे भी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसे ज्ञान न्यून अधिक नहीं होता है। किंतु विपर्यय होता तो दीखता है, क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिक भी होते हैं, तोभी विज्ञान न्यून होजाता है ॥

यदि कहोगे, कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषों करके देह के विगुणी होजानेसे प्राणापानकी बृद्धिसे भी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसे ही मृतावस्थामें भी देहके विगुणी भूत होनेसे चेतनता नहीं है, यह भी असमीचीन है, यदि ऐसे होवे, तबतो मरा हुवाभी जीवता होना चाहिये। तथाहि-"मृतस्य दोषाः समीभवंति" अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं और ज्वरादि विकारके न देखनेसे दोषोंका अभावप्रतीत होताहै,और जो दोषोंका समपणा है, सोई आरोग्यता है, "तेषांसमत्वमारोग्यं क्षय बृद्धिर्विपर्ययः। इतिवचनात्" आरोग्य लाभसे देहको फिर जिंदा होनाचाहिये, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं। यदि मरा हुआ जी उठे,तो हम देहको कारण भी मान लेवें॥

पूर्व०-फिर जी उठनेका प्रसंग आपका अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष देहको वैगुण्य करके निवृत्त होगये हैं; तो भी तिनका वैगुण्यपणा किया हुवा निवृत्त नहीं होता है, जैसे अग्निका काष्टमें किया हुवा विकार अग्निके निवृत्त होनेसे भी निवृत्त नहीं होता है॥

उ०-यह आपका कहना अयुक्त है,क्योंकि विकारभी दो प्रकार के हैं, एक निवृत्त होता है, और एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसे काष्टमें अग्निका किया हुवा श्यामतामात्र, और निवृत्त विकार जैसे अग्निकृत सुवर्णमें द्रवता। वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार हैं चिकित्सा प्रयोग देखनेसे। यदि वायु आदि दोष भी अनिवृत्त विकार होवें,तबतो चिकित्सा निःफल होजावेगी ऐसे भी मत कहना, जो मरणेसे पहिले दोष निवृत्त विकारारंभक हैं, और मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंभक हैं, क्योंकि एक को एक जगह निवृत्त विकार दो रूप नहीं होसक्ते हैं॥

पूर्व०-व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य,और दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासे दूर होसक्ती है और दूसरी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध होसक्ती है ?

उ०-यह भी असत् है, क्योंकि आपके मतमें असाध्य व्याधि ही नहीं होसक्ती है। तथाहि-व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुःके क्षय होनेसे होता है,क्योंकि तिसही व्याधमें समानऔषध वैद्यके योगसे भी कोई मर जाता है, कोई नहीं मरता है, और जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करके चित्रादि व्याधि है,वह हजार औषध से भी नहीं साधी जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके वचनोंके जानने वालोंके मतमेंहीसिद्धहोती है,परंतु आपके भूतमात्र तत्ववादीयोंके मतमें नहीं होसक्ती है कहीं दोष कृत विकारके दूर करनेमें समर्थ औषधि, और वैद्यके अभावसे असाध्य व्याधि हो जाती है, तब औषधि और वैद्यके अभावसे व्याधिवृद्धिमान होकर सकल आयुःको उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय करदेती है, तथा कोईक दोषोंके उपशम होनेसे अकस्मात् मरजाता है, और कोईक अति दुष्ट दोषोंके होनेसे भी नहीं मरता है। यह बात आपके मत में नहीं होसक्ती है॥

आहच-"दोषस्योपशमेप्यस्ति मरणं कस्यचित्पुनः।
जीवनं दोप दुष्टत्वेप्येतन्नस्याद्भवन्मते" ॥ १ ॥

हमारे मतमें तो जब तक आयुः है, तबतक दोषोंसे पीडित भी जीता रहता है, और जब आयुः क्षय होजाता है, तब दोषोंके विकार विना भी मरजाता है, इसवास्ते देह ज्ञानका निमित्त नहीं है। एक और भी बात है,कि देहको जो तुम ज्ञानका कारण मानते

हो, सो सहकारी कारण मानते हो ? वा उपादानकारण मानते हो? यदि सहकारीकारण मानते हो, तवतो हमभी देहको क्षयोपशमका हेतु मानते हैं, कथंचित् विज्ञानका हेतु मानते हैं, यदि उपादान कारण मानते हो, तवतो अयुक्त है। उपादान वह होता है, कि जिसके विकारी होनेसे कार्य भी विकारी होवे, जैसे मृत्तिका और घट । देहके विकार करके संवेदन विकारी नहीं होता है, और देह विकारके विनाभी भय शोकादिकों करके संवेदनको विकारी देखते हैं, इसवास्ते देह संवेदनका उपादानकारण नहीं ॥

उक्तंच-"अधिकृत्यहि यद्वस्तुयःपदार्थो विकार्यते ।
उपादानं न तत्तस्य युक्तंगोगवयादि वत् १ ॥"

इस कहने करके जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य पुत्र के चैतन्यका उपादानकारण है, सो भी खंडन होगया। वहां माता पिताके विकारी होनेसे पुत्र विकारी नहीं होता है, और जो जिस का उपादान होता है, सो अपने कार्यसे अभेद होता है, जैसे मट्टी और घट । जव माता पिताका चैतन्य पुत्रके चैतन्यके साथ अभेद रूप हुआ, तब तो पुत्रका चैतन्य मातापिताके चैतन्यसे अभेद होना चाहिये । इस हेतुसे भूतोंका धर्म वा भूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इसवास्तेआत्मा सिद्ध है। विशेष करके इस चार्वाकमतके खंडनका विस्तार सम्मति तर्क, स्याद्वादरत्नाकरादि ग्रंथोंमें है ॥

प्रश्न-मनुष्योंमें मनुष्यकी परस्पर मित्रताका कथन प्राचीन शास्त्रोंमें किस प्रकार है ?

उत्तर-मनुष्य मनुष्योंके साथ मैत्री भाव रखे, मनुष्यों पर उपकार करे, आपदामें सहाय करे, सत्य धर्म जानता होवे, तो

उपदेश करे, अपनी उत्तम जातिका अभिमान न करे, खानपानकी वच्छलता करे, इत्यादि परस्पर मित्रताकी रीति कथन की है ॥

प्रश्न–मनुष्यका ईश्वरके साथ वास्तविक क्या संबंध है ?

उत्तर–उपदेश्य उपदेशक संबंध है ?

प्रश्न–मनुष्यको ईश्वरके वास्ते क्या क्या करना चाहिये ?

उत्तर–ईश्वर भगवंतको तो किसी वस्तुकी भी इच्छा नहीं है परंतु भक्तजन मनुष्योंको अपने पाप कर्म दूर करने वास्ते जीवन मोक्ष (तीर्थंकर)अवस्थामें जैसा ईश्वर भगवंतकी देहका आकार था तैसे आकारवाली मूर्त्तिस्थापन करके उस मूर्त्तिद्वारा परमेश्वरको अपनी भावनासे प्रत्यक्ष करके, तिस मूर्त्तिमें परमेश्वरका आरोप करके, परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। यद्यपि मूर्त्तिपाषाणादिकों की है, और मूर्त्ति कुछ परमेश्वर नहीं, परंतु तिस मूर्त्तिद्वारा परमेश्वरका स्मरण होता है, इसवास्ते मूर्त्ति परमेश्वरकेस्वरूप स्मरण में कारण है। जैसे ईसाई आदि मतोंमें बाइबल, कुरान, वेदके पुस्तक, इत्यादि। सर्व मतोंवाले अपने अपने पुस्तकोंको ईश्वरके कहे हुये मानते हैं। ईसाई लोक बाइबलको हाथ वा मस्तकोपरि ले करके शपथ करते हैं,और मुसलमान कुरानकी बहुत विनय करते हैं,वास्तवमें तो यह सर्व पुस्तक स्याही और कागज रूप हैं, परंतु ईश्वर ज्ञानके स्मरणवास्ते अक्षररूप मूर्त्ति अपने हाथोंसे बनाई है, और तिसकी विनय की जाती है। तिन कागजों ऊपर अपने हाथ से लिखे अक्षरोंसे जैसे ईश्वरके ज्ञानका बोध होता है,तैसेही मूर्त्ति द्वारा जीवनमोक्ष स्वरूपवाले ईश्वरके स्वरूपका बोध होता है। जैसे विलायतोंके नकशे छोटे, बडे, कागजों पर लिखे जाते हैं,और तिन नकशोंद्वारा विद्यार्थियोंको शिक्षकजन अंगुली रखके कहते

हैं, कि देखो यह रूम है, रूस है,अमेरिका है, हिंदुस्थान है,इत्यादि यद्यपि विद्यार्थी यह नहीं मानते हैं,कि जहां हमारे शिक्षकने अंगुली रक्खी है, यही रूम रूसादि हैं, किंतु तिस नकशे द्वारा उनको असली रूम रूसादिकोंका बोध होता है, तैसे हमभी मूर्तिको असली परमेश्वर नहीं मानते हैं,परंतु तिसमूर्तिद्वारा हमारे सत्योपदेशक परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, इसवास्ते परमेश्वर की मूर्त्ति अवश्य माननी चाहिये। और जो लोक ईश्वरकी मूर्त्तिको नहीं मानते हैं, तिनको अपने मनके पुस्तकोंका भी विनय और शपथ करना न चाहिये , क्योंकि पुस्तकोंका माननाभी मूर्त्तिहीमें शामल है, इसवास्ते पूर्वोक्त मूर्त्तिद्वारा ईश्वरको प्रत्यक्ष करके, ईश्वरके गुणोंका स्मरण करके और अठारह दूषणरहित निःकलंक ईश्वरके स्वरूपका उच्चार करके, मानो यह मूर्त्ति नहीं है, किंतु साक्षात् ईश्वर (भगवान्)ही विराजमान हैं। ऐसे ईश्वरको साक्षात् वा परंपरा करके अपने सत्यधर्मका उपदेशक परमोपकारी जानकर विधिपूर्वक तिसकी पूजा करनी चाहिये। तिन पूजावोंके अनेक भेद हैं, तिनमेंसे अष्ट प्रकारी पूजाका किंचित् स्वरूप लिखता हूं।

प्रथम जलसे परमेश्वरकी मूर्त्तिको स्नान करावे, और मनमें ऐसी भावना भावे, कि हे परमेश्वर ! अरिहंत ! जैसे मैं इस जलसे रजादि मैल दूर करता हूं, और शीतलता प्रगट करता हूं, तैसेही आपकीभक्तिसे मेरे भी सर्व कर्मरूप मैल दूर होवें,और कर्म दाहके दूर होनेसे शीतल निज स्वरूपप्रगट होवे। १। चंदन,केशर,कर्पूर, यह तीनों घसके तिनका लेपन करना, और भावना ऐसी करनी हे भगवन् ! इस विलेपनसे जैसे कुवासना नाश होती है, ऐसे ही मेरी भी अनादिकी बुरी वासना तुमारी भक्तिसे दूर होवे। २। उत्तम

जातिके सुगंधीपुष्पलेके भगवान्को चढ़ाने, और मनमें यह भावना करनी, हे प्रभो! यह जो पुष्प हैं, सो कामदेवके बाण हैं, सो आप को अर्पण करता हूं, जिससे मुझे फिर कामदेव कभी भी संताप न करें। ३। अच्छी धूप लेके अग्नि ऊपर प्रज्वाले,और भावना ऐसी करे, हे परमेश्वर! जैसे यह धूप अग्निमें जलती है, तैसेही आपकी भक्तिसे मेरे सर्व पाप भस्म होजावें, और जैसे धूपके धूम्रकी ऊर्ध्व गति है,तैसे मेरी भी ऊर्ध्वगति होवे। ४। गोघृतसे दीपक प्रज्वालके परमेश्वरके आगे धरे, और भावना ऐसी करे, हे भगवन्! जैसे दीपकसे अंधकार दूर होता है,तैसे आपकी भक्तिसे मेरे घटमें केवल ज्ञानरूप दीपक प्रगट होवे, जिससे अज्ञानांधकार दूर होवे ॥ ५॥ सुंदर अक्षत लेके प्रभुके आगे धरे,भावना ऐसी करे, अक्षतपूजासे मुझे अक्षय सुखकी प्राप्ति होवे। ६। सर्व प्रकारका उत्तम पक्वान लेके थाल भरके प्रभुके आगेधरे,और भावना ऐसीकरे, हेभगवन्! मैं अनादि कालसे खाना चला आता हूं, अब सर्व भोजन आपको अर्पण करता हूं,जिससे मुझे कभी भी भूख न लगे। ७। सुंदर फल लेके प्रभुके आगे धरे, भावना ऐसी करे, हेभगवन्! आपकी भक्ति का मुझे मुक्ति रूप फल प्राप्त होवे। ८। इति॥

ऐसे द्रव्य पूजा करके पीछे चैत्यवंदना, अर्थात् भगवान्के गुणानुवाद नमस्कार रूप स्तुति करे, अपनी शक्ति प्रमाण भगवान् के नामकी महिमा करे, वधावे, तीर्थ यात्रा, रथयात्रादि उत्सव करके भगवान्के धर्मकी वृद्धि करे, देश देशांतरोंमें उपदेश करके भगवान् के कथन करे धर्मकी वृद्धि करे, इत्यादि अनेक तरहकी भक्ति परमेश्वरकी भक्तजनोंको करनी चाहिये॥

प्र०–मनुष्यमें धर्म रूप गुण वास्तविक है, कि नहीं?

उ०—धर्म रूप गुण मनुष्यमें वास्तविक है, क्योंकि धर्म जो होता है, सो धर्मीका स्वरूप ही होता है। जैसे मिसरीकी मिठास इस धर्म पद के कहनेसे ही वास्तविक धर्म धर्मीका अविष्वग् भाव संबंध सिद्ध होता है॥

प्र०—मनुष्यका और ईश्वरका जो संबंध है, सो इस दुनियामें किस प्रकार प्रगट हो रहा है, तिसका यथार्थ स्वरूप क्या है?

उ०—कितनेक तो यह मानते हैं, कि ईश्वर हमारा पिता है, इसवास्ते ईश्वरके साथ पिता पुत्रका संबंध मानते हैं। कितनेक यह मानते हैं, कि हमारा स्रष्टा ईश्वर है, उसीके हाथ हमारी डोरी है, जो उसकी मरजी है, सो कराता है, मनुष्यके कुछ आधीन नहीं है। कितनेक मनुष्योंका कहना है, कि ईश्वरने यह बाजी रची है, सो इसका तमाशा देख रहा है। कोई यह मानते हैं, कि ईश्वरने यह जगत् रचा है, और वही इसका पालन करता है। कोई यह मानते हैं, कि ईश्वर हमारे कर्मोंके फलका दाता है। जैनियोंका यह मंतव्य है, कि जगत् अनादि है, ईश्वर भगवान् हमारा सन्मार्गदर्शी (रहनुमा), और दुर्गति पातसे रक्षक है, इत्यादि अनेक प्रकारके ख्याल होरहे हैं।

प्र०—धर्मका परमपुरुषार्थ क्या है, और धर्मका हेतु क्या है?

उ०—धर्मका परमपुरुषार्थ यह है, कि इस जगद्वासी जीवको नाना गतिके जन्म मरणादि शारीरक और मानसिक दुःखोंका नाश करके परमपद सिद्धपदमें अर्थात् ईश्वर पदमें प्राप्त कराता है। धर्मके हेतु दश होते हैं। मनुष्य जन्म १, आर्य देशोत्पत्ति २, उत्तमकुल ३, दीर्घायु ४, पंचेंद्रियपूर्ण ५, बुद्धिपाटव ६, निरोग्यता ७ सद्गुरुका समागम ८, अष्टादश दूषण रहित परमेश्वरका कथन

किया हुआ धर्मोपदेश श्रवणकरना ९,तिस ऊपर श्रद्धा करनी और तिसके कथनानुसार प्रवर्त्तना ॥ १० ॥

प्र०—अनेक मतोंवाले उपासनाके और धर्मके क्या तरीके रखते है ?

उ०—जैनियोंकी उपासना तो अष्टप्रकारी पूजाके स्वरूपमें किंचिन्मात्र ऊपर लिख आये हैं। और धर्मके तरीके दो प्रकार के हैं। गृहस्थ धर्म के, और साधु धर्म के, तिनमेंसे प्रथम गृहस्थ धर्म के तरीके लिखते हैं। सदा, त्रिकाल, भगवान्‌की पूजा करे, स्थूल जीवोंकी हिंसा न करे, स्थूल मृषा न बोले, स्थूल चोरी न करे, पर स्त्री गमन न करे, परिग्रह तृष्णाका परिमाण करे, देशांतरोंमें जाने का परिमाण करे, मांस मदिरादि बाईस २२ अभक्ष्य बत्तीस अनंत काय भक्षण न करे, पंदरह प्रकारके बुरे बाणिज्य (व्यापार) न करे, चार प्रकारका अनर्थ दंड न करे, दो घडी तक अवकाश मिले शुचि वस्त्र पहरके सामायिक करे, और सर्व पापोंका त्याग करके पंचपर मेष्ठीके स्वरूप का स्मरण करे, वा ज्ञान पढे, चौदह नियम नित्य धारण करे। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्यादि तिथियों में आहार (१), शरीरकी शोभा (२), स्त्रीका संग (३), व्यापार (४), इन चारों वस्तुओंका त्याग करके आठ पहर पर्यंत धर्म्म ध्यान, भजन, पंचपरमेष्ठीके स्वरूपका स्मरण इत्यादि साधु सदृश धर्म करणी करे; तिसका नाम पोषध व्रत कहते हैं, सो करे। सुपात्र को दान देवे। दीन दुःखियोंको दान देवे, राजनीतिक अविरुद्ध नीति पूर्वक व्यापार करे। इत्यादि संक्षेपसे गृहस्थ धर्मके तरीके कथन किये। दूसरे साधुधर्मके तरीके भी संक्षेपसे कथन करते हैं। सर्व जीवहिंसा, सर्वमृषावाद, सर्वचोरी, सर्व मैथुन, और सर्वपरि-

ग्रह इन पांचोंका सर्वथा त्याग करे। किसी जगह अपना स्थान मानके न रहे। मधुकरीभिक्षा बेयालीस ४२ दूषण रहित होकर लेवे। शत्रु और मित्र, कांचन और पत्थर, स्त्री और तृण इन सबपर समभाव रक्खे, अर्थात् न किसी पर राग करे, और न किसी पर द्वेष करे, बाईस २२ परिषह, और सोलां प्रकारके उपसर्ग सहन करे, जीवन आशा, और मरण भयसे विप्रमुक्त होवे। पंचेंद्रियें दमन करे। क्रोध, मान, माया, और लोभको निवारणकरे अष्टादश सहस्र शीलांगको धारणकरे। इत्यादि साधुधर्मके तरीके हैं। अन्यमतवालोंके धर्मके तरीकोंमें लोकोंने स्वकपोलकल्पित अनेक प्रकारके तरीके रचलीये हैं,इसवास्ते सर्व धर्मोंके तरीके हम लिख नहीं सक्ते हैं।

प्र०–धार्मिक जीव,और सांसारिक जीवनके नीति पूर्वक क्या लक्षण हैं ?

उ०–गृहस्थ जीवन के नीति पूर्वक यह लक्षण हैं। न्यायसे धन उपार्जन करे। शिष्टाचारकी प्रशंसा करे, जिनका कुल, शील, अपने समान होवे, ऐसे अन्य गोत्रवालेके साथ विवाह करे। पाप से डरता रहे। देशाचारका उल्लंघन न करे। किसीके भी अवर्णवाद न बोले, और राजाके तो विशेष करके न बोले। जो स्थान अति व्यक्त होवे, तथा अति गुप्त होवे, तिसमें न रहे। अच्छा पडोसी होवे,तिस घरमें रहे। जिस मकानको अनेक आने जानेके रस्ते होवें तिस घरमें न रहे। जो सदाचारी पुरुष होवे तिनका संग करे। माता पिताकी भक्ति पूजा करे। जिस जगह रहनेसे उपद्रव होवे, तहां न रहे। जगतमें जो कर्म निंदनीक होवे,सो न करे,खर्च अपनी आमदनी अनुसार करे। अपने धनके अनुसार वेष रक्खे। बुद्धिके

आठ गुणोंसे संयुक्त होवे। सदा धर्मोपदेश श्रवण करे। अजीर्ण होवे, तो जब तक पिछला जीर्ण न होवे, तब तक नवीन भोजन न करे। अवसर पर साम्यतासे भोजन करे। एक दूसरेकी हानि न होवे, इसतरहसे धर्म, अर्थ, और काम सेवे। यथावत् अतिथि, साधु, और दीनकी अन्नवस्त्रादिकसे प्रतिपत्ति करे। अदेश अकाल चर्या न करे। जो काम करे, सो अपना बलाबल विचारके करे। जो पांच महाव्रतोंमें स्थित होवे, और ज्ञान वृद्ध होवें, तिनकी पूजा भक्ति करे। पोषणे योग्यका पोषण करे। दीर्घ विचारवाला होवे। विशेषका जाननेवाला होवे। किसीने उपकार किया होवे, तो तिस को सदा अपना उपकारी माने। लोकोंको वल्लभ होवे। लज्जावान् होवे। दयावान् होवे, सौम्यप्रकृति वाला होवे। परोपकार करे। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष, इन षट् (६) आंतर वैरीयोंके त्याग करनेमें तत्पर रहे। पांच इंद्रियोंके समूहको वश करनेवाला होवे। इन पैंतीस वस्तुओं करी संयुक्त होवे, तब संसारी जीवन के पूर्ण नीति पूर्वक लक्षण होते हैं। और धार्मिक जीवनके नीति पूर्वक लक्षण गृहस्थी और साधु धर्मके प्रश्नमें ऊपर लिख आये हैं।

प्र०–मनुष्यके उच्चपद प्राप्त करनेमें आत्मिक शक्ति क्या है?

उ०–उच्चपद दो प्रकार के हैं। एक सांसारिक, और दूसरा पारमार्थिक, तिनमें संसारिक उच्चपद इंद्र, चक्रवर्त्ति, वासुदेव, बल देव, मंडलिक राजादि पद प्राप्ति पूर्वोक्त ३५ वस्तुओंके करने रूप शक्ति है। और परमार्थिकपद ईश्वर, तिसके प्राप्त करनेमे कारण जो ऊपर साधुधर्मके तरीकेमें लिख आये हैं, वे शक्तियांही आत्मिक शक्तियां हैं॥

प्र०–धर्ममें संदेह रहित क्या बातें हैं?

उ०-जीवदया, सत्यबोलना, चोरी न करनी, परस्त्री गमन न करना, क्षमा करनी, आर्जव होना, मार्दव होना, संतोषधारणकरना परोपकार करना इत्यादि बातोंके अच्छे होनेमें कोई भी आस्तिक मतवाला संदेह नहीं कर सकता है॥

प्र०-नानाप्रकारके धर्म शास्त्रोंके अवलोकनकी क्या अति आवश्यकता है?

उ०-नानाप्रकारके धर्म शास्त्रोंके अवलोकनकी आवश्यकता इसवास्ते है, कि पक्षपात रहित मध्यस्थ होकर जब सर्व मतोंके शास्त्र बांचके तत्व विचार करेगा, तब प्रायः तिस जीवको सत्य मार्गकी प्राप्ति होजावेगी॥

प्र०-ऐसे अवलोकनके नियम, और शरतें कैसी हैं?

उ०-प्रथम तो जिस शास्त्रका अवलोकन करे, तब तिसके कथन करनेवालेमें अठारह दूषण न होवें; और तिसके कथनमें पूर्वा पर स्ववचन व्याहत न होवे; तथा तिसका जो कथन है, सो प्रत्यक्ष प्रमाणसे जो जगत् दीखता है, तिससे विरुद्ध न होवे। तथा कषशुद्ध छेदशुद्ध, और तापशुद्ध, इन तीनों परीक्षाओंके नियमोंसे जैसे शुद्ध हुआ सुवर्ण उपादेय है, तैसे ही इन पूर्वोक्त तीनो परीक्षाओंके नियमों से जो शास्त्र शुद्ध होवे, तिस शास्त्रका सर्व कथन मानना चाहिये। पूर्वोक्त तीनों परीक्षाओंका स्वरूप यह है। प्रथम स्वर्णको कसौटी ऊपर रगडके देखे, दूसरी वार तिसको छेद करके देखे, और तीसरीवार तिसको अग्नि करके ताप देवे, जब इन तीनों परीक्षायोंमें शुद्ध होवे, तब स्वर्ण शुद्ध उपादेय होता है; ऐसे ही जिस शास्त्रमें अनेक प्रकारके पापोंका निषेध, और पापोंके प्रति पक्षियों को स्वीकार करनेकी विधि होवे; अर्थात् जिस शास्त्रमें एक

ही प्रयोजनके वास्ते निषेध, और विधि बहुत प्रकारसे कथनकी होवे, जैसे मोक्षके वास्ते पापोंका निषेध होवे, और मोक्षके वास्ते ही पापोंके प्रतिपक्षियोंके स्वीकारकी विधि होवें, तिस शास्त्रको तीर्थंकर भगवान् कषशुद्ध शास्त्रकहते हैं। तिसका उदाहरणः-जिस शास्त्रमें ध्यान, अध्ययन, दया, सत्य, शील, संतोषादि विधियोंका समूह और हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्री, परिग्रह, क्रोध, मान, माया लोभ इत्यादिका निषेध; यह दोनों ही कथन मुक्ति वास्ते होवें, सो शास्त्र कषशुद्ध होता है। और जो शास्त्र अर्थ, काम विमिश्रित होवे, और कथा कहानीयों करके भरा हुआ होवे, और मोक्षार्थ गोण रूप होवे, सो शास्त्र कषशुद्ध नहीं होता है। जिस शास्त्रमें विधियोंकी और निषेधोंकी योगक्षेम करनेवाली क्रिया सर्वत्र कथन होवें, सो शास्त्र छेदशुद्धिवाला होता है। मुनि (साधु) मलोत्सर्ग आदिकी क्रिया भी समित और गुप्त सहित करे तो वडे भारी धर्म कृत्य करनेमें तो समित गुप्त सहित करना तिसका तो क्या ही कहना है? इत्यादि। और जिस शास्त्रमें उत्सर्ग तो अन्य अर्थके वास्ते, और अपवाद अन्य अर्थके वास्ते होवे; जैसे वेदमें कहा है

"न हिंस्यात् सर्वभूतानि"

यह कथन मोक्षार्थ है, और

"श्वेतवायव्यामजमालभेत्भूतिकाम इत्यादि"

यह श्रुति हिंसाको कथन करती है, सो धनकी प्राप्तिके वास्ते है। ऐसा जो शास्त्र होवे सो छेदशुद्धिवाला नहीं। जिस शास्त्रमें सर्व नयोंके मतसे वस्तु स्वरूप कथनरूप अग्निकरके मिथ्या रूप श्यामता न रहे, सो शास्त्र ताप शुद्धिवाला है। और जिस शास्त्रमें

एक नयके मतमे एकांत ही वस्तु स्वरूप कथन किया होवे, सो शास्त्र तापशुद्धिमत नहीं है। यह पूर्वोक्त नियम शुद्ध शास्त्रकी परीक्षामें हैं, और शरत यह है, कि जिस शास्त्रका कथन करनेवाला निर्दोष, और सर्वज्ञ होवे, सो शास्त्र यथार्थ होता है॥

प्र०-ऐसे अवलोकनका इतिहास और उसकी वर्त्तमान दशा क्या है?

उ०-श्रीअरिष्टनेमिभगवान्के शिष्य थावच्चापुत्रमुनिके पास व्यासजीके पुत्र शुक नामा परिव्राजकने निर्णय करके सत्यधर्म स्वीकार किया, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है। निरावलिकासूत्रमें सोमल ब्राह्मण चतुर्दश विद्यावान् तिसने निर्णय करके गृहस्थधर्म स्वीकार किया। भगवतीसूत्रमें चतुर्दश विद्यावान् सोमलनामा ब्राह्मणने तत्वका निर्णय करके जैनधर्म स्वीकार किया, दशवैकालिक सूत्र कर्त्ता शय्यंभव भट्टने मीमांसकमत छोड़के प्रभवास्वामीके पास दीक्षा ली। तथा इंद्रभूति १, अग्निभूति २, वायुभूति ३, व्यक्त स्वामी ४, सुधर्म ५, मंडितपुत्र ६, मौर्यपुत्र ७, अकंपित ८, अचल भ्राता ९, मेतार्य १०, प्रभास ११, यह एकादशही ब्राह्मण चतुर्दश विद्यावान् ४४०० छात्रों सहित तत्वनिर्णय करके श्रीमन्महावीर स्वामी चोवीसमें तीर्थंकरके पास दीक्षा लेके शिष्य बने। इत्यादि इतिहास है॥

प्र०-हालमें मनुष्य जाति ऊपर नष्ट हुए २ धर्म क्या असर रख गये हैं॥

उ०-प्रथम तो जैन, वेद अर्थात् मीमांसक, नैयायिक, सांख्य पातंजल, बौद्ध यही धर्म हिंदुस्थानमें प्राचीन गिने जाते हैं। अब के माने हिंदुस्थान में एक बौद्धके विना शेषधर्म विद्यमान हैं, तिस

में भी एक जैनके विना और मत प्रायः मृततुल्य होरहे हैं। अन्य देशोंमें जहां जहां से कर्मकांडी मीमांसकोंका धर्म्म नष्ट होगया है उस का असर जीवोंको मारके कुर्वानीयां करनीयां, और अनेक प्रकार के वैलादि जीवोंको मारके तिसके चर्म, मांस, रुधिर का होम परमेश्वको प्रसन्न करने वास्ते करना। जैसे तौरेत, और कुरानादि पुस्तकोंमें कथन है। तथा जैसे इलयिट पुस्तकके युद्ध वर्णनमें हेकटर प्रमुख अनेक योद्धाओंने अनेक तरहके जानवरों का अनेक तरहके देवतायोंको वलीदान दिया था। इत्यादि सर्व असर प्रायः मीमांसक मतके नष्ट होनेका मालूम होता है। सूफी मारफत वाले मुसलमानोंमें जो मत चलता है, सो वेदांतमतके नष्ट होनेका असर रहा मालूम होता है। हिंदुस्तानमें जो ब्राह्मणादि जातियें हिंसकयज्ञ छोड़कर मांस मदिरादि पापोंसे बची रहती हैं,सो जैन और बौद्ध धर्मकी प्रवलताके नष्ट होनेका सर्व असर रहा मालूम होता है। तथा अन्य देशोंमें जो कुछ रहमादि अच्छी २ रीतियें रह गई हैं, वह भी पूर्वोक्त जैन और बौद्ध मत की प्रवलताके नष्ट होनेका असर मालूम होता है॥

प्रश्न–सारे जहानके ईश्वरको हरेकधर्ममें मनुष्योन्नतिमें किस दरजे बताया है? (ईश्वर न्यायी है, हरेकमतवाले मानते हैं, कि ईश्वर सर्व संसारका स्वामी है, फिर भिन्न २ प्रजाओंमें भिन्न २ देशोंमें जो मनुष्य जातिकी न्यूनाधिक उन्नति है, वह किस तरहसे ईश्वरकी न्याय शीलतासे विरोध नहीं रखती है, इसमें उनका "ईश्वरका" भिन्न मतोंमें क्या वर्णन है?)

उत्तर–सर्वमतोंमें जो ईश्वरको न्यायी माना है, सो तो सत्य है, क्योंकि ईश्वर भगवान्में न्यायशीलता गुण स्वभाविक है,

परं जो लोकोंने यह समझ रखा है, कि हाकिमोंकी तरह ईश्वर सर्व जीवोंका न्याय कर्त्ता है, यह मानना जैनमतके शास्त्रों से और प्रमाण युक्तिसे विरुद्ध है, क्योंकि जैसे एक वाणिये के पास एक सहस्र सोने मोहरें हैं, उनके होनेसे वह वणिग् बड़ा भारी सुखी हो रहा है, तव एक चोर ने उस की सर्व मोहरें उठा लीं, जव वणिया कोलाहल करने लगा, तव उस चोरने उस वणियेके शरीरमें तलवारका घाव किया, तव वणिया चुप्प होरहा, और चोर धन लेकर चला गया,और अपने मनमें परमानंद सुख मानने लगा अव हम विचार करते हैं,कि वणियेको जो एक सहस्र मोहरें मिली थीं, उनसे उसने परम सुखमाना, यह तो उस वणियेने जो सुकृत किया था,उसका फल ईश्वरन्यायी की तर्फसे उसको मिला, और चोर जो मोहर उठा ले गया, और उस वाणिये को वरछी तलवारसे घायल किया सो उस वाणिये ने जो पाप किया था,उसका दुःख रूप फल उसके करे कर्मानुसार ईश्वर न्याय कर्त्ताने दिया परंतु ईश्वरने जो फल दिया, सो निमित्त द्वारा दिया ? वा निर्निमित्त दिया ? निर्निमित्त फल तो किसीको हो ही नहीं सक्ता है, क्योंकि उस वणियेके दुःखफल में चोर, वरछी, तलवारादि निमित्त हैं। अव हम यह पूछते हैं, कि इन निमित्तोंका प्रेरक यदि ईश्वर मानीयें,तव तो चोरीआदि पापोंकाकरानेवालाभी ईश्वरही सिद्ध होगा। यदि ईश्वर निमित्त को नहीं प्रेरता है, तो ईश्वर न्यायी और अच्छे बुरे फलका दाता क्योंकर सिद्ध होगा ? यदि मनुष्योंको विनाही पुण्य पापके करे अच्छे बुरे अर्थात् कितनेक मनुष्योंको राज्यकुलमें उत्पन्न करना सर्व जींदगी निरोग्य, ऐश्वर्यता, परमसौख्य, मन इच्छित भोग्य

विलासता, इत्यादि। और कितनेक जीव गर्भसेही दुःखी, जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त दुःखी, शारीरक और मानसिक पीड़ा, भूखमरा, महारोग पीडित होकर समाप्ति करते हैं, यह सर्व पूर्वोक्त काम ईश्वर करता है, तो उस ईश्वरको कौन बुद्धिमान् न्यायी, दयालु, पक्षपात रहित, समदृष्टि मान सक्ता है? यदि जीवोंके करे पुण्य पापानुसार ईश्वर सुख दुःख देता है, तब तो यह संसार अनादि सिद्ध होगा, और ईश्वरको चोरी, यारी, असत्य भाषणादि कलंक लगाने पड़ेंगे, और ईश्वर अन्यायी सिद्ध होगा

प्रश्न—जगत् रचनेका प्रश्न आपको ईश्वरसेही पूछना चाहिये, कि जगत् किस तरह किस वस्तुसे रचा, और सुखी दुःखी किस वास्ते रचे हैं?

उत्तर—जब ईश्वर भगवान् हमसे कहेगा, कि यह जगत् मैंने रचा है, और विनाही पुण्य पापके मैंने जीवोंको सुखी दुखी रचा है, तब हम ईश्वर भगवान्से अपना प्रश्न करेंगे परंतु ईश्वर तो हमको पूर्वोक्त बातें नहीं कहता है, आपही पूर्वोक्त बातें कहते हैं, इसलिये आपसे ही पूर्वोक्त प्रश्न पूछा जाता है। इसवास्ते सिद्ध हुआ कि ईश्वर जगत्का न्याय करनेवाला नहीं है, और न ईश्वर मनुष्योंको उच्च, नीच, धनाढच, निर्धन, सुखी, दुःखी, राजा, रंक ज्ञानी, अज्ञानी, सुरूप, कुरूपादि करता है। जैसे कोई पुरुष रस्ते चला जाता है; उसके सिर पर किसी मकानसे ईंट, वा पत्थर, वा काष्टादिगिरपड़ा, जिससे उसका सिर फटगया, और महा दुःख उत्पन्न हुआ। अब हे मित्र! विचार कर देखो, कि वह मकान ईश्वरने नहीं चिना है, किंतु कारिगरोंने चिना है। और वह ईंट पत्थर काष्टादि भी ईश्वरने नहीं रचे हैं और जो ईंट पत्थर

काष्टादि उसके सिर पर पडा, और सिर फूटा, सो ईश्वरने फैंकके नहीं फोडा है, किंतु उस ईंट, पत्थरादिके श्लेष बंधन कालसे जीर्ण होगये, उससे वा किसी मनुष्य, वा जानवर, वा पवनकी प्रेरणा से ईंटादि उसके सिरमें लगनेसे दुःख हुआ है, परन्तु ईश्वर की प्रेरणासे नहीं हुआ है। इसलिये इसजगत्की विचित्र सुख दुःख उंच नीचादि रचना ईश्वरने नहीं रची है, किंतु प्रवाहसे काल, स्वभाव, नियति, कर्म, पुरुषार्थ जड पदार्थ की परस्पर प्रेरणादि निमित्तोंसे यह जगत् विचित्र प्रकारका उत्पन्न होता है, और विनाश होता है। अनादि अनंत काल तक इसी तरह चला जावेगा। और मोक्ष पद भी अनादि अनंत है. उसमें भी जीव कर्मोंका नाश करके मिलते जाते हैं। और जगद्वासी जीव जैसे २ शुभाशुभ कर्म करते हैं, उनके अनुसार ही मनुष्यादि जन्मों में अपने २ निमित्त द्वारा सुख, दुःख, उंच, नीचादि नाना प्रकारकी अवस्था भोग रहे हैं, और जो जो जगद्वासी जीव पुण्य पाप कर रहे हैं, और जिस २ निमित्त द्वारा जैसे २ भोग रहे हैं और भोगेंगे वह सर्व अवस्था अरिहंत सिद्ध परमेश्वर अपने ज्ञानसे जानते हैं। जैसे वह ज्ञानसे जिस कर्मका जिसनिमित्तसे फल भोगना जानते हैं, सो तैसेही भोगनेमें आता है, कदापि अन्यथा नहीं होता है। इसके सिवाय अन्यमतोंवाले जो २ कल्पना करते है, सो यथार्थ नहीं हैं, किंतु ईश्वरको कलंकित करते हैं॥

प्रश्न–सर्व धर्मोंमें न्यूनता क्या है?

उत्तर–अपनेअपने माने धर्ममें प्रायः किसीने भी न्यूनता नहीं बतलानी है, दूसरे मतोंमें तो नुकस बतलानेको त्यार ही वैठे हैं। जैनधर्ममें तो नुकस किंचिन्मात्र भी नहीं है, परंतु शारारिक और

मानशिक ऐसी सत्ता इस कालमें इस भारतवर्षके जैनीयोंमें नहीं है, जिससे मोक्षका मार्ग जैसा कथन किया है वैसा संपूर्ण नहीं पाल सक्ते हैं। इस काल मूजब जैसा साधुपणा, और श्रावकपणा कहा है, तैसा तो पालते हैं,परंतु संपूर्ण औत्सर्गिक मार्ग नहीं पाल सक्ते हैं। १। दूसरा यह नुकस है,कि इन्होंमें (जैनीयोंमें) विद्याका उद्यम जैसा चाहिये वैसा नहीं है।२। ऐक्यता नहीं है,साधुओं में भी प्रायः परस्पर ईर्षा वहुत है।३। यह नुकस जैनधर्मके पालने वाले सांप्रति कालके जैनीयोंमें हैं,परंतु जैनधर्ममें तो कोईभी नुकस नहीं है ॥

प्रश्न–मनुष्य जातिके लिये याहुदी, ईसाई, और शेष धर्मोंने क्या किया है ?

उत्तर–मनुष्य जाति के लिये एक जैनधर्मके विना शेष धर्मों ने एकांशी सुधारा, अर्थात् अपने अपने धर्म पुस्तकों के उपदेश से मनुष्यको ईश्वर भक्ति, दया, दान, सत्य, शील, संतोष, क्षमा, आर्जव, मार्दव विनय, परोपकार, कृतज्ञता आदि जो अच्छे चाल चलन प्रवर्त्ताये हैं, सो तो मनुष्य जातिको इसलोक में भलाई, और परलोकमें स्वर्ग राज्यादि प्राप्तिरूप होनेसे सत् धर्मके निकट करण रूप उपकार किया है; और जो उन्होंने मनुष्य जातिको परमेश्वर, गुरु और धर्मका सत्य स्वरूप नहीं वतलाया, किंतु विपर्यय बोध कराया है,सो वडा भारी मनुष्य जातिका नुकसान किया है। और जैनधर्मने मनुष्य जातिके वास्ते एकांत हित और सत्य मोक्ष मार्ग ही वतलाया है, परं विपर्यय नहीं वतलाया है, इसलिये एकांत उपकार ही किया है, परंतु नुकसान नहीं ॥

प्रश्न–पश्चात्ताप करनेके मंत्रकी आवश्यकता की प्रतीति लोकोंको किस तरहसे हुई ?

उत्तर-प्रथम तो पश्चात्ताप करनेसे जो अज्ञानपणे गुनाह किया होवे, सो दूर होता है, परं सर्व गुनाह नहीं । हां कितनेक गुनाह पश्चात्ताप करनेसे ढीले तो होजाते हैं । और पश्चात्तापभी वही ठीक है,जो पश्चात्ताप करके फिर वही गुनाह न करे । और पश्चात्तापके मंत्रकी प्रतीति होनेमें यह कारण है, कि जो मनुष्य गुनाहके फलसे डरता हुआ शुद्ध अंतःकरणसे पश्चात्ताप करता है, तब उसका अंतःकरण बहुत मृदु होता है, और उस शुभ और कोमल अंतःकरणकी प्रवृत्ति ही पापोंके नाश करनेवाली है । और इस पश्चात्ताप करनेका मंत्र अठारह दूषण रहित, सर्वज्ञ, परमेश्वरने बतलाया है । और परमेश्वर झूठ कदापि नहीं कहते हैं,इस लिये पूर्वोक्त सर्वज्ञ परमेश्वरके समयमें गौतमादि मुनियोंने जो पश्चात्ताप करनेकेमंत्रका स्वरूप अपने ज्ञानसे निश्चित सत्य करके माना, उन्होंके उपदेशसे लोकों को निश्चय हुआ, कि यह पूर्वोक्त मंत्र सत्य हैं । अर्थात् उनके वचनसे ही लोकोंको प्रतीति हुई, यह सिद्धांत है॥

प्रश्न-धर्म संबंधी आरामके दिनकी आवश्यक्ता ॥

उत्तर-धर्म करनेमें सदा प्रवर्त्तमान होना चाहिये । हां, जिस को धर्म करनेमें अवकाश न मिलता हो तो वह पुरुष ऐसा निश्चय करे, कि अमुक अमुक दिनमें मैं अवश्य धर्म करूंगा । ऐसे पुरुष को तो दिनोंका निश्चय करना ठीक है, परंतु जो स्वतंत्र है, उस को तो निरंतर ही धर्म करना चाहिये । और पापके वर्जने वास्ते कोई दिन अवश्य नियत करना चाहिये। और ऐश,अशरत खेलन रमण करने वास्ते कोई दिन भी नियत नहीं है॥

प्रश्न-हरेक धर्मवाले किसको अवतार मानते हैं ?

उत्तर—एक जैनधर्मके सिवाय प्रायः बहुत धर्मोंवालोंकाख्याल है, कि विमुक्त रूप होकर और शरीर रहित होकर फिरभी परमेश्वर जगत् में अवतार ले सक्ता है। अवतार लेनेका कारण यह मानते हैं, कि जब धर्मकी न्यूनता होती है,साधु अच्छे लोक दुःखी होते हैं,तब उनकी न्यूनताको पूर्ण और उपकार करनेवास्ते औरजो दुष्ट राक्षस, धर्मके विरोधी हैं तिनका नाशकरने वास्ते परमेश्वर युग युगमें अवतार लेता है यह कथन गीता में है॥

बौद्धमतका यह सिद्धांत है,कि हमारे धर्म तीर्थका करनेवाला भगवान् परमपद मोक्ष को प्राप्त होकर जब अपने चलाये धर्म वाले लोकों को पीडित देखता है, तब उनकी पीड़ा दूर करने वास्ते फिर अवतार लेता है॥

ईसाई मतवाले यह मानते हैं, कि आदम की पापी संतानके उद्धार वास्ते परमेश्वरने मरियम माता कुमारीकी कूखसे जन्म ईशामसीहका रूप धारण किया॥

जैनीयोंका यह ख्याल है, कि मुक्ति हुआ पीछे फिर संसारमें कदापि शरीर धारी नहीं होता है। क्योंकि शरीर धारनेका हेतु शुभाशुभ कर्म है.और जब मुक्ति होती है;तब सर्व कर्मोंका अभाव होता है, इसवास्ते जैनमतवाले मुक्ति होनेके पीछे फिर जगत्में अवतार धारण करना नहीं मानते हैं। और जिस तरह जैनमतवाले अरिहंतका होना मानते हैं, सो पूर्व लिख आये हैं॥

वेद, स्मृति, पुराणवाले तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेवको ईश्वरके अवतार मानते हैं। कितनेक मच्छ, सूकर, कच्छु, नरसिंहादि चोवीस अवतार ईश्वरके मानते हैं। और कितनेक पतंजल, शंकर स्वामी, रामानुज आदि को भी ईश्वरावतार मानते हैं। जिस २

काल में जो २ पुरुष कुछ प्रख्यातिवाला होता है, उसको ही उस के भक्त अपने २ रचे पुस्तकोंमें ईश्वरावतार लिख देते हैं ॥

हिंदुस्थानमें तो थोडे २ काल पीछे ईश्वरको अवतार लेके अनेक तरहके परस्पर विरुद्ध पंथ चलाने पडते हैं। मैं नहीं जानता कि हिंदुस्थानियोंपरि परमेश्वर की ऐसी क्या दयालुता है ? जिस से जलदी जलदी ही अवतार लेता है। परंतु मुक्त होने पर ईश्वर जगत्में अवतार लेता है, यह कथन प्रमाण युक्तिसे विरुद्ध है, क्योंकि सर्व मतोंवाले ईश्वरको सर्व शक्तिमान् मानते हैं। जब ईश्वरको सर्व शक्तिमान् माना, तब ईश्वर देह धारे विना ही जो चाहे,सो क्यों नहीं कर सक्ता है?यदि बिनाही देहधारेकरसक्ता है तो फिर ईश्वरको माताके गर्भमें उत्पन्न होनेकी क्या आवश्यक्ता थी ? और जिसकामके सुधारनेवास्ते अवतार लेना था उस काम का प्रथमसे ही इंतजाम अच्छाकरना था,जिससे काम न बिगडता और न अवतार लेना पड़ता ॥

तथा ईश्वरको बहुतमतोंवाले सर्व व्यापक मानते हैं, परं जो सर्व व्यापक होता है, सो अक्रिय अर्थात् कुछभी हिलने चलनेकी क्रिया नहीं कर सक्ता है। आकाशवत्। यदि ईश्वर सर्व व्यापक, और सर्व शक्तिमान्, दयालु, सर्व जीवोंका हितचिंतक, और शुद्ध धर्मोपदेशक है, तो जिस जिस जगह धर्म संबंधी समाजों के झगडे पड़ते हैं, जिसमें मनुष्योंके परस्पर सांसारिक, और धार्मिक वैर विरोध खडे होते हैं, जिससे लाखां आदमी कतल होजाते हैं, और अनेक प्रकारकी हानीयां, रंज, दुःख खडे होते हैं,वहां समाज में ही दयालु, सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान् ईश्वर, झटपट क्यों नहीं कहदेता है? कि यह सत्य है,और यह झूठहै। इसको छोड़दो,

और इसको स्वीकार करलो। यह मेरा कथन किया हुआ सत्यमार्ग है, और यह नहीं। क्योंकि जब ईश्वर प्रजाके अनेक दुःखोंके दूर करने वास्ते माताके गर्भमें रह कर जन्म लेके अनेक शत्रुओंके संकटोंसे भाग दौड़से बचकर परोपकार करता है, तो पूर्वोक्त सर्व काम विना तकलीफके झटपट क्यों नहीं कर सक्ता है? और यदि कहोगे, ईश्वर पूर्वोक्त रीतिसे नहीं कर सक्ता है, तो फिर सर्व शक्तिमान् क्योंकर सिद्ध होसक्ता है?

तथा एक देशमें अवतार लेना, अन्य देशोंमें नहीं, इसका कारण क्याहै? क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकोंने तो हिंदुस्थानमें ही अवतार लिया, अन्य देशोंमें नहीं। ईसामसीहने भी पश्चिम देश में ही अवतार लिया, अन्य देशोंमें नहीं। और महम्मद साहिब को भी खुदाने अरबमें ही भेजा, अन्य देशोंमें नहीं। क्या परमेश्वर लाख दो लाख ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसामसीह, महम्मद साहिब आदि रचके वा उनका अवतार लेके सर्व देशोंमें असभ्य और जंगली लोगों तक उपदेश देकर उनकी मुक्ति नहीं कर सक्ता है?

प्रश्न–तुम्हारे जैनमतके चौवीस तीर्थंकरभी तो आर्यावर्त्त देशमेंही उत्पन्न हुये हैं, तो क्या उनमें यह पूर्वोक्त दूषण नहीं सिद्धहोतेहैं?

उत्तर–हे प्रियवर! यह दूषण तो तीर्थंकरोंमें तब सिद्ध होवें, जब वह अपनी स्वेच्छा शक्तिसे तीर्थंकर पदको प्राप्त होवें। ऐसा तो जैन सिद्धांतोंमें माना ही नहीं है, तो फिर यह पूर्वोक्त दूषण क्योंकर लग सक्ते हैं?

प्रश्न–जैनमतमें तीर्थंकर होनेमें क्या निमित्त माना है?

उत्तर–जिस जीवने अत्यंत शुभ कर्म किया होवे, सो उस शुभ कर्मके वश होकर जन्म लेता है, किंतु स्वतंत्र नहीं॥

प्रश्न–जब तीर्थंकर भी कर्माधीन हैं, तो फिर वे सिवाय कर्मों के कुछ भी नहीं कर सक्ते हैं, तो उनको परमेश्वर क्यों मानना चाहिये॥

उत्तर–जैसे अष्टादश दूषण रहित, अनंत ज्ञानादि गुणोंकी सहजानंद स्वरूप ऋद्धि के ईश्वर अरिहंत हुए हैं, ऐसा जगत्‌का माना कोई भी ईश्वर नहीं हुआ है, इसवास्ते अरिहंतही परमेश्वर हैं; अन्य नहीं, क्योंकि लोकोंने तो राजाओंकी तरह सर्व जगत्‌का जो स्वामी है, उसको ईश्वर माना है, परंतु उन के कथनसे ही अठारह दूषण रहित किसीका भी माना परमेश्वर सिद्ध नहीं होता है; किंतु उनके शास्त्रानुसार पक्षपाती, निर्दयी, अज्ञानी, कामी, अहंकारी, क्रोधी, अन्यायी, दुराचारी, असमर्थी, असर्व शक्तिमान सिद्ध होता है॥

प्रश्न–हम कैसे मानें, कि अरिहंत परमेश्वरमें अठारह दूषण नहीं थे, और अन्योंने जो ईश्वरके अवतार माने हैं; उनमें पूर्वोक्त दूषण थे?

उत्तर–हे प्रियवर! पक्षपात छोडके अरिहंतादि माने हुए सर्व अवतारोंकी सर्व जिंदगीके कर्म, जो जो उन्होंने किये हैं उन को पढ़ो, और उनकी मूर्त्तियें देखो, कि उनका आचार विचार और आकार कैसा था, इससे तुमको आपही मालूम हो जावेगा, कि दूषणोंवाला कौन था, और दूषणों रहित कौन था॥

प्रश्न–जैनीयोंने अपने तीर्थंकरोंकी बावत अच्छी२ बातें लिख ली हैं, और उनकी मूर्त्तियें भी शांत, दांत, निर्विकारी, स्त्रीसंग रहित, निस्पृह रूप वाली बनाली हैं॥

उ०–आपकी यह कल्पना मिथ्या है, क्योंकि आपके ग्रंथकारों

को किसीने रोका था ? कि तुम अपने अवतारोंके अच्छे २ गुण न लिखो, और उन की बुराइयां लिखो, कि अमुक अवतारने पुत्रीसे भोग किया, अमुक अवतारने परस्त्री गमन करी, अमुक अवतार अमुक की मांग को भगा के ले गया, अमुक अवतार अपनी स्त्री के वियोगसे वनमें रोता फिरा, अमुक अवतार किसी ऋषिके आगे नंगा होकर नाचा ऋषिने शाप दिया तब उसके लिंगके टुकडे २ होगये, तथा अमुक अवतारने युद्ध कराया आप भी करा, अमुक अवतारने झूठ बुलवाया, अमुक अवतार चलता हुआ थक गया, अमुक अवतार गूलरके फल खाने गया उसमें जाके देखा तो फल नहीं है तब उसको शाप दिया कि तू सूक जा वो सूक गया, अमुक अवतारने मरे को जिंदा किया अपनी मौत आई तब शूली चढ़के मरना पडा, चाहते थे, कि न मरें, परं कुछ नहीं चला, जब मृत्यु आई, तब ही मर गये, अबतक जीते न रहे, तथा परमेश्वरने अमुक जातिके मनुष्यों को रचा, जब उन्होंने परमेश्वर का कहना न माना, तब परमेश्वरने पश्चात्ताप किया, और परमेश्वरने क्रोध करके अमुक २ नगरका नाश किया, अमुकको शाप दिया इत्यादि अनेक तरहका कथन ग्रन्थकारोंने उनकी बाबत लिखा हैं ॥

यदि पूर्वोक्त लक्षण उनमें न होते, तो ग्रन्थकार अपने अवतारों के संबंधमें ईश्वरके अयोग्य ऐसी बातें न लिखते। क्या ग्रंथकार उनके शत्रु थे ? जिससे उनकी बाबत अयोग्य बातें लिख गये यदि जूठ ही लिख गये हैं, तो उनके सर्व ग्रंथ प्रतीति योग्य नहीं हैं। इसलिये सिद्ध होता है, कि लोकोंने जो अवतार माने हैं वह वास्तवमें वैसे ही चालचलनवाले थे जैसे ग्रंथकारोंने लिखे हैं ॥

यदाह भर्तृहरिः--शंभु स्वयंभु हरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकर्मदासाः।
वाचा मगोचर चरित्र विचित्रताय।
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥

इत्यादि ॥ इसवास्ते चोवीशतीर्थंकरोंका जैसा जीवनचरित्र था वैसा ही उस समयके ग्रंथकारोंने लिखा है। इसवास्ते जीवनचरित और मूर्त्तिके देखनेसे सदोष, निर्दोषपणा अवतारोंमें यथार्थ सिद्ध होजाता है।

प्रश्न–अवतारों की तवारीख, और गुणानुवाद क्या हैं ?

उ०–जैनके चौवीस तीर्थंकरोंकी इतिहास रूप तवारीखदेखनी होवे, तो श्रीहेमचंद्रसूरि विरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुपचरितमें देख लेनी। और चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीकी तवारीख संक्षेप मात्र नीचे लिख देते हैं ॥

विदेह देशमें क्षत्रियकुंडग्रामका काश्यप गोत्रीय और सूर्यवंशीय अर्थात् ज्ञातवंशीय सिद्धार्थ नामा राजा था, उसकी त्रिशला नामा राणी की कूखसे विक्रम संवत् से ५४२ वर्ष पहिले चैत्र शुदि १३ मंगलवारकी रात्रिमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके प्रथम पादमें जन्म हुआ। जन्मका नाम मातापिताने वर्द्धमान रखा। जब यौवनवंत हुए, तब मातापिताने सिद्धार्थ राजाके सामंत समरवीरकी पुत्री यशोधाके साथ विवाह कराया। २८ वर्षकी उमर हुई, तब माता पिता परलोक गये। पीछे दो वर्षवडे भाईके कहनेसे घरमें रहे, तीस वर्षकी अवस्था तक महावीरस्वामी घरमें रहे, और एक पुत्री प्रियदर्शना उत्पन्न हुई। पीछे वडे भाई नंदीवर्द्धन राजाकी आज्ञा लेके स्वयमेवही दीक्षा ली। एक वर्ष तक एक देवदूष्यवस्त्र रखा

और पीछे जिंदगी पर्यंतही वस्त्र रहित रहे। दीक्षा लेने पीछे अनेक उपसर्ग परिषह इनको हुए, तौभी किंचिन्मात्र अपनी सत्यप्रतिज्ञासे चलायमान नहीं हुए, तब देवतोंने श्रीश्रमण भगवंत महावीर नाम रक्खा,जबसे दीक्षा ली तबसे सर्व जीवहिंसा १, असत्य भाषण २, चोरी ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, इत्यादि सर्व पाप करने, कराने, और अनुमति देनेका त्याग किया। तीन ज्ञान तो उनको गर्भसे ही थे। दीक्षा लेतेही चौथा मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न हुआ। श्रीमहावीरस्वामीने साढे बारहवर्षतक महा उग्रतप किया, और इनको साढे बारहवर्षमें जो जो उपसर्ग हुए,और जिस२ ग्राम नगरादिमें हुए, और इन्होंने किस तरह साम्य समाधिसे सहन किये, सो सर्व अधिकार आवश्यकसूत्र, कल्पसूत्रवृत्ति आदि ग्रंथों में है। जब साढे बारह वर्षकी तपस्या,और शुभध्यानादिके निमित्त से चार घाति कर्म सर्वथा नष्ट हुए, तब वैशाख शुदि १० दशमी के दिन पिछले पहरमें जृंभिका गामकी ऋजुवालुका नदी के कांठे पर इनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वहांसे चलकर मध्यपापा नगरीमें आये, वहां ग्यारह ११ मुख्य इंद्रभूति गौतम प्रमुख,चतुर्दशविद्यापठित ब्राह्मण थे, उनके मनके संशय वेद श्रुतियोंके और युक्तिके अनुसार दूर करके,गौतमादि ११ मुख्य और ४४०० विद्यार्थीयोंको दीक्षा दी,उनमें गौतमादि११ को गणधर पद दिया। इन्होंने भगवंतके दिये उपदेशको आचारांगादि ग्रन्थोंमें रचा और चंपाके राजा दधिवाहनकी पुत्री कुमारिका चंदनाने श्रीमहावीरके पास दीक्षा ली उसकी छत्तीस हजार शिष्यनीयां हुई॥

केवलज्ञान उत्पन्न होनेके पीछे श्रीमहावीरस्वामी पूर्वादि देशों में विचरे, महावीरजीके जीते हुए १४००० से अधिक गिनतीमें

साधु नहीं हुए, और ३६००० से अधिक साधवीयां नहीं हुई, १५९००० से अधिक श्रावक नहीं हुए, और ३१८००० से अधिक श्राविका नहीं हुई। श्रीमहावीरजीके उपदेश से अनेक राजे उन के भक्त हुए, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं। राजगृह नगर का राजा श्रेणिक जिसका दूसरा नाम भम्भसार था १। चम्पा का राजा अशोकचन्द्र, भम्भसारका पुत्र, कोणिक भी इसी राजा का नाम है तथा बौद्धग्रंथोंमें इसकानाम अजातशत्रु है २। वैशालि नगरीका राजा चेटक ३। काशी और कौशल देशके १८ गण राजे२१। पुलासपुरका विजयराजा २२। अमलकल्पा नगरीका स्वेत राजा २३। वीतभय पटन सिंधुदेशका उदायनराजा २४। कौशांबी का उदयनवत्सराजा २५। क्षत्रियकुंडग्राम नगरका नंदीवर्द्धन राजा २६। उज्जयनका चंद्रप्रद्योतराजा २७। पृष्टचंपाका शाल राजा २८। पोतनपुरका प्रसन्नचंद्रराजा २९। हस्तिशीर्ष नगरका अदीनशत्रुराजा ३०। ऋषभपुरका धनावह राजा ३१। वीरपुर नगर का वीरकृष्णमित्रराजा ३२। विजयपुरका वासवदत्तराजा ३३। सौगंधिक नगरीका प्रतिहतराजा ३४। कनकपुरका प्रियचन्द्रराजा ३५। महापुरका बलराजा ३६। सुघोष नगरका अर्जुनराजा ३७। चंपाका दत्तराजा ३८। साकेतपुरका मित्रनंदीराजा ३९। दशार्णपुरका दशार्ण भद्रराजा ४० इत्यादि अनेकराजे महावीरके भक्तथे,इन सर्वके नाम अंगोपांगादि शास्त्रोंमें लिखे हैं। श्रीमहावीरस्वामीकी ४२बैतालीस वर्ष दीक्षा जिंदगी हुई, जिसमेंसे बारां चतुर्मासे छद्मस्थ अवस्थामें किये, और तीस चतुर्मास केवलीपणेमें किये, सो आगे लिखते हैं। अस्थिग्राममें १, राजगृहमें २, चंपामें ३, पृष्टचंपामें ४, भद्रिका नगरीमें ५, भद्रिकमें ६,अलंभियामें ७,राजगृहमें ८,अनार्यदेशमें९,

सावथीमें १०, विशालामें ११, चंपामें १२॥ केवलीपणेके १२ चतुर्मास राजगृहमें, ११ विशालामें, ६ मिथिलामें,और एक चतुर्मास पावापुरीमें। सर्व मिलकर बैतालीस, जिसमें तीस चतुर्मास तक श्रीमहावीरजीने चारोंवर्णोंको उपदेश देके धर्मकी वृद्धि की। पीछे अंतका चतुर्मास पावामें हस्तपाल राजाकी जीर्ण दफतरकी सभा में किया,कार्तिक वदि अमावस्या की रात्रिमें निर्वाणको प्राप्त होते भये, अर्थात् मुक्ति सिद्धपद परमेश्वरपदमें विराजमान हुए। इति॥

अन्य मतवाले जिनको अवतार मानते हैं, उनका कितनाक इतिहास यद्यपि मैं जानता हूं, तोभी मैं लिख नहीं सक्ता हूं। क्योंकि उनके भक्त मेरे लेख को वांचकर अप्रसन्न होवेंगे,इसवास्ते अपने अपने माने अवतारोंका इतिहास आपही कहेंगे, वा लिखेंगे

हमारी परीक्षा मूजब जो जो अवतार लोगोंने माने हैं,वह सर्व अठारह दूषणोंसे रहित नहीं थे, किंतु अरिहंतही दूषणों रहित थे और जो मतवालोंने परमेश्वर माना है,उनके कहनेसेही वह परमेश्वर अज्ञान, असमर्थ, राग, द्वेष, निर्दय, पक्षपात, असमदृष्टि इत्यादि दूषणोंवाला सिद्ध होता है। इसवास्ते अरिहंत और सिद्ध के विना अन्य कोई भी परमेश्वर नहीं है, यह जैनोंका सिद्धांत है॥

सिद्ध जगदुपकारके वास्ते कुछ भी नहीं करते हैं और जो अरिहंत भगवान् हैं, सो एक धर्मका उपदेश ही देते हैं, धर्मके काम सिवाय और कुछभी सांसारिक काम नहीं करते हैं,इसवास्ते अठारह दूषण रहित पूर्वोक्त अर्हन् भगवान् तथा सिद्ध भगवान् ही सिद्ध होते हैं॥

परमेश्वरके गुणानुवाद करनेकी किसकी शक्ति है? जो सर्व कर सके, परं थोडेसे गुणानुवाद लिख दिखाते हैं।यह जो गुणानुवाद

लिखे जाते हैं, वे अरिहंत पद के जानने, अरिहंत भगवान् बदले के उपकार की इच्छा रहित राजा और रंक, ब्राह्मण और चंडाल, प्रमुख सर्व जातिके योग्य पुरुषादिको एकांत हितकारिणी, संसार समुद्र तारक धर्म देशना देते हैं। जिनमें अनंतज्ञान १, अनंत दर्शन २, अनंत चारित्र ३, अनंत तप ४, अनंतवीर्य ५, अनंतपांच लब्धियां ६, क्षमा ७, निर्लोभता ८, सरलता ९, निराभिमानता १०, लाघवता ११, सत्य १२, संयम १३, निस्पृहता १४, ब्रह्मचर्य १५, दया १६, परोपकारता ७, राग रहित १८, द्वेष रहित, १९, भय रहित २०, जुगुप्सारहित २१, हास्य रहित २२, शोकरहित २३, रति रहित २४, अरतिरहित २५, काम रहित २६, मिथ्यात्व रहित २७, अज्ञान रहित २८, निद्रारहित २९, अविरति रहित ३०, शत्रुमित्रभाव रहित ३१, कनक पत्थर ऊपर समभाव ३२, स्त्रीतृण ऊपर सम भाव ३३, मांसाहार रहित ३४, मदिरापानरहित ३५, अभक्ष्य भक्षणरहित ३६, करुणा समुद्र ३७, सूर ३८, वीर ३९, धीर ४० अक्षोभ्य ४१, परनिंदा रहित ४२, अपनी स्तुति रहित ४३, जो कोई उनसे विरोध करे, आशातना निंदा करे उनको भी उपदेश द्वारा तारनेवाले ४४ इत्यादि अनंत गुणानुवाद हैं ॥

अरिहंत पदके, और सिद्ध पदके इकट्ठे गुणानुवाद लिखते हैं अव्यय १, विभु २, अचिंत्य ३, असंख्य ४, आद्य ५, ब्रह्मा ६, ईश्वर ७, अनंत ८, अनंगकेतु ९, योगीश्वर १०, विदितयोग ११, अनेक १२, एक १३, ज्ञानस्वरूप १४, अमल १५, इनोंका अर्थ—अव्यय अपचयको जो न प्राप्त होवे सो द्रव्यार्थ नय के मतसे अव्यय, तीनों कालमें एक स्वरूप है १। विभाति शोभता है परमेश्वरपणे करी जो सो विभु, अथवा विभवति समर्थ होवे कर्मोन्मूलन करके

सो विभु, अथवा इंद्रादिक देवताओं का जो स्वामी, सो विभु २। अचिंत्य, अध्यात्म ज्ञानीभी जिसको चिंतवन करनेको समर्थ नहीं सो अचिंत्य ३। असंख्य, जिसके गुणोंकी संख्या नहीं, कि इतने गुण हैं परमेश्वरमें सो असंख्य ४। आद्यं, आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहार प्रवर्त्तावणेसे, अथवा अपने तीर्थकी आदिकरनेसे आद्यं ५। ब्रह्मा, अनंत आनंद करी जो सर्वसे अधिक वृद्धिवाला होवे सो ब्रह्मा ६। ईश्वर, सर्व देवतादिकों का जो ठाकुर सो ईश्वर ७। अनंत, अनंतज्ञान दर्शन चारित्र जिसको होवे, सो अनंत; अथवा नहीं है अंत जिसका, सो अनंत ८। अनंगकेतु, कामदेवको केतुके उदय समान जो नाश करे, सो अनंगकेतु, अथवा नहीं है औदारिक, वैक्रिय, आहारिक, तैजस, कार्मण शरीर रूप चिन्ह जिस को सो अनंगकेतु ९। योगीश्वर, चार ज्ञानके धर्त्ता जो योगी उन्हों का जो ईश्वर होवे, सो योगीश्वर १०। विदितयोग, जाने हैं सम्यग् ज्ञानादि रूप जिसने, अथवा योग ध्यानादि सो जाने है जिसने अथवा वि विशेष करके दितः खंडित किया है योग कर्मका संयोग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग ११। अनेक, ज्ञान करके सर्व गत होनेसे अथवा अनेक सिद्धोंके एकत्र रहनेसे, अथवा गुणपर्याय की अपेक्षासे, अथवा ऋषभादि व्यक्तिभेदसे, अनेक १२। एक, अद्वितीय उत्तमोत्तम, अथवा जीव द्रव्यापेक्षया एक १३, ज्ञानस्वरूप ज्ञान क्षायककेवल है स्वरूप जिसका, सो ज्ञानस्वरूप १४। अमल नहीं है, अष्टादश दोष रूप मल जिसके सो अमल १५। यह पूर्वोक्त पंदरां विशेषण ईश्वरके मतांतरोंमें प्रसिद्ध हैं॥

सिद्धपदके गुणानुवाद लिखते हैं। अक्षय १ अजर २ अमर ३, अचल ४, अव्यय ५, अमल ६; अविकार ७, निराकार ८, ज्योतिः-

स्वरूप ९, ईश्वर १०, परमब्रह्म ११, परमात्मा १२, सच्चिदानंदस्व रूप १३, अयोनि १४, अपुनर्भव १५, इत्यादि अनंत गुणानुवाद ईश्वरपदके हैं ॥

प्र०–धर्मका परस्पर प्रेम या संबंध क्या है ?

उ०–धर्मका परस्पर आत्माके साथ तो धर्म धर्मी संबंध है, और जितने जगत्में धर्म चलते हैं, तिनमें संबंध सत्यताका है, और प्रेमभी सत्यताका है ॥

प्र०–धर्मका पदार्थविद्या, शिल्पविद्या, और साहित्यविद्याके साथ क्या क्या संबंध है ?

उ०–पदार्थविद्याके साथ धर्मका ज्ञान ज्ञेय संबंध है, और शिल्पविद्या जो सावद्य है, उसके साथ हेय संबंध है, और जो शिल्पविद्या निरवद्य है उसके साथ धर्मका उपादान उपादेय संबंध है, और साहित्यविद्या जो निरवद्य आत्माके ज्ञान दर्शन चारित्रकी वृद्धि कारक है, उसके साथ धर्मका कार्यकारण संबंधहै

प्र०–दर्शनशास्त्र, पदार्थविद्या संबंधिक शास्त्र, जीवन और सामाजिक संबन्धी शास्त्र किस प्रकारसे धर्म शास्त्रको सहायता देसक्ते हैं ॥

उ०–वर्त्तमानमें जितने मत चलते हैं, उनके शास्त्रोंको हम दर्शनशास्त्र समझते हैं। दर्शनशास्त्रोंमें जितनी सत्यता है, वह तो धर्मकी वृद्धिमें सहायक है, और जितनी असत्यता है सो धर्म शास्त्रकी महत्वता घटानेमें सहायक है। और पदार्थविद्या संबंधी शास्त्र तो धर्मशास्त्रमें जो जो जड़ चैतन्यके परस्पर मिलापसे जो अनंत शक्तियां कथनकी हैं, उन शक्तियोंमेंसे कितनीक शक्तियोंको पदार्थविद्याका शास्त्र प्रगट कर दिखलाता है, इसवास्ते पदार्थ

विद्याका शास्त्र धर्मशास्त्रकी सत्यता प्रगट करनेमें सहायक होता है। जीवनशास्त्रको हम अर्थशास्त्र अर्थात् धन उत्पन्न करने का शास्त्र समझे हैं। न्यायसे धन उत्पन्न करे, तो जीवनशास्त्र धर्मशास्त्रकी प्रवृत्तिमें सहायक है, और अन्यायसे धन उपार्जन करे, तो पाप कर्म उपार्जन करे, उससे धर्मशास्त्रको विरोध होता है। और वैद्यकशास्त्र रोग दूर करनेसे धर्मशास्त्रकी प्रवृत्तिमें सहायक है,और सामाजिकशास्त्र हम नीति शास्त्रको समझे हैं, नीति शास्त्र जब जगत् में लोकोंको नीति पूर्वक प्रवृत्ति कराता है, तब नीतिशास्त्र धर्मशास्त्रकी आज्ञाको बढ़ाता है,इसवास्ते नीतिशास्त्र भी धर्मशास्त्रको सहायक है॥

प्र०–किस प्रकारसे धर्मशास्त्र दूसरे विद्या संबंधी शास्त्रोंको सहायता कर सक्ता है? धर्म और गायनका क्या संबंध है?

उ०–धर्मशास्त्र अन्य विद्या संबंधी शास्त्रोंको किंचित् सहायता कर सक्ता है, सर्वथा नहीं। जितना जितना अन्य शास्त्रोंमें धर्मशास्त्रके अनुकूल लेख है, उसकी पुष्टि करनेसे सहायक है, और जितने लेख अन्यशास्त्रोंमें धर्मशास्त्रोंसे विरुद्ध हैं,उनके करने का निषेध करनेसे धर्मशास्त्र अन्य विद्या संबंधी शास्त्रोंका विरोधी है। यदि परमेश्वरके गुणानुवाद, गुरुस्तुति, धर्मस्तुति, धर्मस्वरूप किसी धर्मी जन की स्तुति गीत गान रागमें करे,तो सुननेवालों को धर्मपुष्टि और पुण्य बंध होवे, और गानेवालेको कर्मनिर्जरा और पुण्य बंध होवे, और जो विषय गर्भित, मोह गर्भित गायन करे, तो पापानुबंध और भविष्य जन्ममें दुर्गति होवे॥

प्रश्न–मनुष्यको पूर्ण पवित्र बनानेके लिये धर्मका कहां तक असर है?

उत्तर–धर्मका बड़ा भारी असर है, क्योंकि धर्म इसजीवको ईश्वर पद की प्राप्तिकरा सकता है। इससे अधिक अन्य पवित्रताकोईभी नहीं है।

प्रश्न–धर्मसे भ्रष्ट होजावे, तो फिर शुद्ध किस तरहसे होता है?

उ०–अठारह दूषण वर्जित अरिहंत परमेश्वरने धर्मसे भ्रष्टहोये हुए पुरुषोंको फिर शुद्ध होनेवास्ते श्राद्धजीतकल्प, यतिजीतकल्प, निशीथ, कल्प, व्यवहारादि शास्त्र कथन किये हैं। उनमें भ्रष्ट हुए पुरुषोंकी शुद्धि वास्ते दश प्रकारके प्रायश्चित्त वर्णन किये हैं। जैसा२ अपराध, उसका तैसा२ प्रायश्चित्त शुद्धि के वास्ते लिखा है। धर्मी गृहस्थके वास्ते और साधुके वास्ते पृथक २ प्रायश्चित्त वर्णन किये हैं। वह प्रायश्चित्त लेके उसका पालन करे, तो फिर शुद्ध होजाता है। जैसे वस्त्रका दाग उतरनेसे वस्त्र शुद्ध होजाता है॥

प्रश्न–कितनेक लोक मोक्षके वास्ते बलिदान परमेश्वरको देते हैं, उसकी जरूरत है वा नहीं?

उत्तर–जीवोंको मारके जो बलिदान परमेश्वरको करते हैं, सो उनकी बडी भूल है, क्योंकि परमेश्वर तो वीतराग करुणा समुद्र सदा निस्पृही है, वह तो किसी भी कामसे रोषवान और तोषवान नहीं होता है, तो फिर उसके वास्ते जीव मारके बलि देनी, सो महा पाप है। और यह रीति महा अज्ञानीयोंने चलाई है, सो हमारा रचा हुआ *जैनमतवृक्षदेखनेसे मालूम होजावेगी।

प्रश्न–धर्म और देशोन्नति से क्या अभिप्राय है?

उ०–धर्मकी प्रबलता होनेसे देशोमें न्याय नीतिसे चलना, परस्पर एकत्वका होना, परोपकारका करना, सर्व जीवों पर दया करनी, सत्य बोलना, विश्वास घात न करना, सद्विद्याका अभ्यास करना,

---

*यह पुस्तक ।≠) में श्रीआत्मानंद जैन सभा लाहौर से मिल सकती है।

संतोषसे जिंदगी पूरी करनी,चोरी,यारी, अभक्ष भक्षण,अपेय पान इत्यादिकोंका वर्जना,अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टिदेवतादिके मानने का त्याग करना इत्यादि शुभ कर्म जिस देशमें होवें,सो देशोन्नति है। और विना धर्मके देशोन्नतिका होना असंभव है।

प्र०–राजा और रिवाजों को क़िस प्रकार मानना चाहियें?

उ०–यदि राजा नीति पूर्वक आज्ञा करे, तो आज्ञा माननी चाहिये,और जो रिवाज श्रेष्ठ जनोंने फायदे वास्ते चलाये होवें,उन रिवाजोंको अवश्य मानना चाहिये। और जिन रिवाज़ोंके न मानने से देश,नगर,जातिसे अपनेको सांसारिक और धार्मिक हानी पहुंचे चाहे वह रिवाज निर्जीव भी होवें,तोभी मानने चाहिये,शेष नहीं।

प्र०–पूर्ण धर्मके अंग जिसका वर्णन नाना मतोंमें मिलता है, क्या हैं? आखीरी धर्मके लक्षण क्या हैं? ॥

उ०–संपूर्ण धर्मके अंग तीन हैं। दर्शन, ज्ञान, और चारित्र। दर्शन नाम श्रद्धा तत्व रुचिका है। तत्व तीन हैं। देव, गुरु, और धर्म। देव नाम परमेश्वरका है। परमेश्वर वह है,जो अठारह दूषणों से रहित है,और बारह गुणोंसे संयुक्त है। और इस जगत्में सत्यधर्म का उपदेष्टा, देह छोडने पीछे सिद्धपद ज्योतिःस्वरूपमें एकत्व होनेवाला, ऐसे परमेश्वर विना अन्यकोई परमेश्वर नहीं है। और ऐसे परमोपकारी परमेश्वरकी पूजा भक्ति अपने अंतःकरण की शुद्धिवास्ते करनी, उसके नामकी महिमा अपनी शक्त्यनुसार जगत्में प्रसिद्ध करनी,सदा उसके गुणानुवाद करने, इसको शुद्ध देव तत्व कहते हैं १। और गुरु उसको कहते हैं, जो पांच महाव्रत धारी होवे,धर्मका जानकार होवे,सदा समभाव में रहे, शुद्ध भिक्षा अर्थात् दूषण रहित माधुकरी भिक्षा मांगके ल्यावे, उससे देहको

धर्माधार जानके पाले, इत्यादि अनेक गुणोंसे संयुक्त होवे और पूर्वोक्त देवके कथनानुसार जगद्वासी जीवोंको उपदेश करे सो गुरु तत्व है २। धर्मतत्व जो कुछ पूर्वोक्त देव परमेश्वरने जीवों के तरने वास्ते रस्ता बतलाया है, उस पर जो चलना, सो धर्म तत्व है ३। इन तीनों से जो विपरीत होवे उसको कुदेव १ कुगुरु २ और कुधर्म ३ कहते हैं। इनमें से देव गुरु और धर्म को सत्य करके माने, और कुदेव, कुगुरु, कुधर्म इन तीनोंका सर्वथा त्याग करे तब दर्शन नामक धर्मका प्रथम अंग होता है। ज्ञानके पांच भेद हैं, मतिज्ञान १, श्रुतिज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्याय ज्ञान ४ केवलज्ञान ५, इन पांचों ज्ञानोंका स्वरूप और इनका ज्ञेय षट्द्रव्य, नव तत्वादिकोंको यथार्थ जाने, तब ज्ञान नामक दूसरा धर्मका अंग होता है। धर्मका तीसरा अंग चारित्र है,तिसके चरण सत्तरी और करणसत्तरीके भेद होनेसे १४० भेद हैं। इनमें चरण सत्तरीके भेद ऐसे हैं। महाव्रत ५, यति धर्म १०, संयम १७, वैयावृत्य १०; नवब्रह्मचर्य गुप्ति ९, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ३, तप १२, क्रोधादि ४, का निग्रह, यह सत्तर ७० भेद हैं। करणसत्तरीके सत्तर ७० भेद यह हैं। पिंड विशुद्धि ४, समिति ५, भावना १२, प्रतिमा १२, इंद्रिय निरोध ५, प्रतिलेखना २५, गुप्ति ३, अभिग्रह ४ यह करण सत्तरीके ७०सत्तर भेद हैं। एवं सर्व १४०भेद चारित्रकेहैं यह तीसरा धर्मका अंग है,जब दर्शन,ज्ञान,औरचारित्र यह तीनों संपूर्ण अवस्थाको प्राप्त होवें,तब धर्मके आखीरी लक्षण भी यही हैं॥

इति श्रीमद्बुद्धिविजयगणि शिष्य श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वर विरचित चिकागोप्रश्नोत्तर ग्रन्थः समाप्तः।

शुद्धि पत्रम् ॥

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	ह्तुसे	हेतुसे
१	१८	मनप्य	मनुष्य
२	१८	नैनायिक	नैयायिक
३	१२	समस्मलोके	समस्तलोके
३	१६	नास्त	नास्ति
६	१६	उपादाकारण	उपादानकारण
७	२१	सृष्टिसे	सृष्टिसे
८	२	चक्रक दूषण होता	चक्रक दूषण भी होता
८	३	या	तव
८	२२	परमेइवर	परमेश्वर
१२	१	पाप उदय से	पाप के उदय से
१८	१०	के विना निषेधे विना	के निषेधे विना
२१	२२	सन्यासा	सन्यासी
२८	१७	वांध्या	वाध्या
३१	६	इति तरेतराश्रय	इतिइतरेतराश्रय
३१	१४	कुंभादिक	कुंभारादिक
३३	१८	कुंभकारादिकोंका	वढ़इयादिकों का
३४	१०	सिद्व	सिद्धि
३६	०	नह	नहीं
७२	९	मिसी	किसी
७७	१९	कस्यचित	कस्यचित्
८४	१२	जीव	जीवन
८८	१०	तिसन	तिसने
९२	२४	शारारिक	शारीरिक
९३	१	मानशिक	मानसिक
१०२	६	अशाक चन्द्र	अशोकचन्द्र
१०३	२३	शाक्त	शक्ति

चिकागो प्रश्नोत्तर १)

जैनभानु प्रथम भाग ।≠)

जैनबालोपदेश)॥

दयानंद कुतर्क तिमिर तरणि ।≠)

मूर्तिमंडन ।)

जंबु नाटक ।)

निन्यानवे प्रकारी पूजा ।)

जैनधर्म का स्वरूप ≠)

नवग्रह शांति भाषांतर ≠)॥

प्रातमंगलपाठ ....)॥

पंच मंगलपाठ ....)॥

तत्त्वार्थ सूत्र मूल .... –)

महामुनिराज श्रीआत्मारामजी की मूर्ति मुफ्त,

यह सब पुस्तकें २॥)रु० में दी जायेंगी। डाक खर्च जुदा ॥

मिलने का पता—जसवंतराय जैनी, दिल्ली।